समर्पण

जिनकी प्रेरणा ने मुझे अपने साहित्यिक मार्ग पर

आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त बल दिया

उन्हीं स्नेही बड़ी बहिन

गुलाबदेवी सक्सेना

को सादर

समर्पित

नाट्यकार एवं कवि डा० रामकुमार वर्मा

भेंट

जिन्होंने मेरे साहित्यिक तन्तुओं को देख साधना का
मन्त्र दिया और साहित्य के क्षेत्र में
पदार्पण करने के लिए पहला
मंच उपलब्ध कराया
उन्हीं
श्रद्धेय डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी०-एच० डी०
को उनकी ५३ वी वर्षगाँठ के **अवसर**
पर सादर भेंट

प्रकाशकीय वक्तव्य

देश के विस्तृत प्राङ्गण में प्रत्येक काल में ऐसी ज्योतिपुञ्ज विभूतियाँ विराजमान रही हैं जिनका ज्ञान-प्रकाश स्वदेश को ही नहीं, विश्व के समस्त सभ्य और संस्कृति-सम्पन्न देशों को आलोकित करता रहा है। ऐसी महान् आत्माओं के कृतित्व को पढ़ कर जो भी ज्ञानार्जन होता है, उससे कहीं अधिक व्यक्ति का साक्षात् कर कुछ क्षण वार्तालाप, सम्भाषण एवं विचार-विमर्श से होता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'साहित्य के साथी' में आज के युग के कुछ प्रमुख विचारक, चिन्तक एवं विद्वान कलाकारों के साथ हुए सम्भाषणों को लिपिबद्ध किया गया है। प्रश्नोत्तर रोचक और ज्ञेय हुए हैं। आशा है, पाठक पुस्तक का उचित मूल्यांकन करेंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

	भूमिका	१-२४
१.	कविवर ठाकुर गोपालशरण सिंह	३
२.	कविशिरोमणि श्री सियारामशरण गुप्त	१६
३.	उपन्यास सम्राट् श्री वृन्दावनलाल वर्मा	२६
४.	महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	४५
५.	महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	६५
६.	पं० सुमित्रानन्दन पंत	७५
७.	नाट्यकार एवं कवि डा० रामकुमार वर्मा	९१
८.	आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	१०७
९.	संत-कवि एवं साहित्यकार प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	१२३
१०.	डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला की नोक-झोंक (१)	१३५
११.	डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला की नोक-झोंक (२)	१४३

भूमिका

पहली जनवरी १९५३ की बात है। मैं पुस्तकालय से लाई हुई पुस्तकों को समाप्त करने में लगा था। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' की पुस्तक 'मैं इनसे मिला' मेरे हाथ में आई और मैंने एक ओर से उसे पढ़ना शुरू किया। निराला जी से भेंट के विषय को जब पढ़ने लगा तो मुझे बड़ी निराशा हुई। पूरा-का-पूरा लेख केवल एक संस्मरण बन कर रह गया है और ऐसी ही छाप कमलेश जी की प्रत्येक भेंट मे मिली। कमलेश जी ने साहित्यकार के व्यक्तित्व को और उनके चारों ओर के वाह्य वातावरण को अधिक महत्त्व दिया है। वे उनके व्यक्तिगत विचारों को महत्त्व नही दे पाए, कम-से-कम प्रथम खण्ड मे तो मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ। मैंने अनुभव किया कि पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जिसमें कलाकार-विशेष का एक अच्छा परिचय और सम-सामयिक विषयों एवं समस्याओं पर उसके प्रत्यक्ष और संशयहीन विचार पाठकों के सम्मुख आएँ।

इस विचार का पुष्टीकरण तब और होगया जब मैंने बंगाल के प्रसिद्ध गायक एवं कवि दिलीपकुमार राय की अग्रेजी पुस्तक 'अमंग द ग्रेट' पढ़ी। इसमें विश्व के प्रमुख साहित्यकारों से सम्बन्धित इन्टरव्यूज है। दिलीपकुमार जी ने रोम्या रोलाँ, बर्ट्रेन्ड रसल, महर्षि अरविंद और महाकवि टैगोर जैसे विद्वानों से भेंट कर अधिकतर दार्शनिक विषयो की ही वार्ता की है। पुस्तक बहुत पसंद आई और उसने मुझे अपने कार्य के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

हिन्दी के जिन साहित्यकारों की सूची मैंने अपने इस कार्य के लिए बनाई, उनकी संख्या ३० के लगभग आई। मैंने सभी से इन्टरव्यू लेने का विचार किया।

अब, सूची के अन्तर्गत आए हुए व्यक्तियों के साहित्य को पढ़ना मेरे लिए विशेष आवश्यक था, क्योंकि किसी भी कलाकार से कोई भी प्रश्न करने के पहले यह आवश्यक होता है कि उसे प्रश्नकर्त्ता अच्छी प्रकार समझता हो और मोटे रूप से उसकी सभी प्रकार की विचार-धाराओं से परिचित हो।

इस दृष्टि से मैंने एक नई सूची बनाई जिसमें उन साहित्यकारों को मैंने रखा जिनका साहित्य या तो मेरे पास पहले से था अथवा मैं उपलब्ध कर सकता था। इस सूची में १५ कलाकार आए और मैंने एक ओर से जिनका भी साहित्य मिला, उसका अवलोकन करना शुरू किया। मुझे एक विहंगम दृष्टि डालनी थी, इसलिए इस कार्य में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ी; हाँ, कठिनाइयों का आभास तब मिला जब मैंने साहित्यकारों से समय माँगना शुरू किया और रेलभाड़ा व्यय करके, कलाकारों की ही सुविधा पर अपने को अर्पित करने का कार्य प्रारम्भ किया। इस पुस्तक में जिन कलाकारों को मैं एक साथ लाना चाहता था, नही ला पाया हूँ। इसका मुख्य करण यही रहा कि एक-एक कलाकार से पूर्ण रूप से निवृत्त होने में ही पर्याप्त समय लगा।

पहले साहित्य को पढ़ना, फिर प्रश्नों को बना कर कलाकार-विशेष के पास भेजना, फिर अनुमति प्राप्त कर तिथि-विशेष पर उनसे मिलना। मिलने के उपरान्त इन्टरव्यू को लिपि-बद्ध करना और कलाकार-विशेष को पुन: दिखाना कि वह ठीक उनके विचारों के अनुसार आया है अथवा नहीं। यह सब कार्य महीनों ले लेते थे। कठिनाइयों के कारण प्राय: इन्टरव्यू लिख कर कुछ कलाकारों को दिखलाया भी नही जा सका, किन्तु जिन-जिन कलाकारों को पुष्टीकरण के लिए दिखलाया, उन्होंने सोलह आना समर्थन किया और इसीलिए आत्मविश्वास बढ़ जाने के कारण पुनः दिखाने की चिन्ता भी कुछ कम हो गई। कुछ-एक इन्टरव्यूज सामयिक पत्रों में जब प्रकाशित हुए तो कलाकार-विशेष ने पूर्ण संतोष

प्रकट किया और इस कारण मैंने अपने प्रयास को अधिक सफल समझा है। ब्रह्मचारी जी ने तो मेरे प्रश्नों के उत्तर अपने हाथ से लिखकर दिए।

पहला इन्टरव्यू ८ मार्च १९५३ को कविवर सियारामशरण गुप्त का उनके निवास-स्थान चिरगाँव (झाँसी) में लिया गया। इस इन्टरव्यू में मुझे कोई भी कठिनाई नही हुई और मैं कोई भी औपचारिकता नही बरत पाया। गुप्त जी के यहाँ मैं अचानक पहुँचा और इण्टरव्यू लेने की बात ध्यान में आ गई। मैंने वहाँ पहुँच कर ही अपने मस्तिष्क में कुछ प्रश्न बनाए, जिनके उत्तर बहुत ही सरल रूप म मुझे गुप्त जी से मिले।

गुप्त जी का इण्टरव्यू २१ जून, ५३ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में दिल्ली से प्रकाशित हुआ और मुझे मेरे बहुत से मित्रों ने प्रोत्साहन देते हुए पत्र लिखा कि चीज बढ़िया थी। इस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता और भी है। उधर गुप्त जी ने भी पढ़ा और मुझे एक पत्र लिखा कि इण्टरव्यू में मैंने जो कुछ भी लिखा, वह एक रोचक चीज हो गई है।

इन पत्रों से मुझे बहुत बल मिला और मैं अपने आगे के कार्य में जुट पड़ा। इस पुस्तक के साथ-हो-साथ अन्य बहुत से कार्य भी करता रहा और अड़चनें भी बहुत-सी आईं, इस कारण तीन साल बाद इन नौ साहित्यकारों का इण्टरव्यू दे सका। सबसे बड़ी कठिनाई एक यह भी आई कि कुछ-एक इण्टरव्यू कुछ विशेष पत्रों में प्रकाशन के लिए स्वीकृत होकर भी साल-साल भर सम्पादक के पास पड़े रहे, जिन्हें बाद में अप्रकाशित लौटा लेना पड़ा। सुमित्रानन्दन जी पंत का इण्टरव्यू १४ महीने तक 'नया समाज' के मोहन सिंह जी सेंगर के पास पड़ा रहा, फिर भी नहीं प्रकाशित हुआ और इतने पर भी जब मैंने लौटाने को लिखा, तो उनके कुछ रुष्ट होने का ही आभास मिला। राहुल जी का इण्टरव्यू 'प्रतिभा' में प्रकाशित होने के लिए पहले स्वीकृत हुआ, फिर तीन महीने

बाद पता नहीं सम्पादकों को क्या सूझी कि क्षमा माँगते हुए उन्होंने उसे लौटा दिया। ठा० गोपालशरण सिह का इण्टरव्यू 'भारती' में १० महीने बाद सितम्बर' ५६ के अंक में प्रकाशित हुआ। इन कठिनाइयों से घबड़ा कर अन्य 'इण्टरव्यज' को मैंने कही न भेजना ही उचित समझा और इतने दिन बाद अब सब को एकत्र कर पाया। निराला जी का इण्टरव्यू भी बहुत दिन पड़ा रहने के बाद 'अवन्तिका' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुआ।

ऐसी स्थिति में मेरी गति में इतना अवरोध आया कि मैंने आगे अन्य कलाकारों से इण्टरव्यू लेने के पूर्व ६ व्यक्तियों का ही एक संग्रह प्रकाशित कर देना आवश्यक समझा और यह पुस्तक तैयार हुई।

इस पुस्तक में जिन विद्वानों को मैंने एकत्र किया है, उनको मैंने क्यों और कैसे अपनाया है, इस पर प्रकाश डाल देना आवश्यक समझता हूं; वैसे इस संग्रह में सम्मिलित किए हुए सभी साहित्यकार उच्चतर श्रेणी की साहित्यिक पाठ्य पुस्तकों के अंग है। मै यहाँ पर उन दृश्यो का भी चित्रण करूँगा, जिस वातावरण में मैंने ये इण्टरव्यूज प्राप्त किए हैं।

ठा० गोपालशरण सिंह

द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि, खड़ीबोली के काव्य-निर्माता और अपनी भाषा, संस्कृति व देश को सदैव गौरव प्रदान करने वाले कविवर ठा० गोपालशरण सिह से कौन अभिज्ञ नहीं! आपकी कविता में जिस सरसता और भावों की गूढ़ता के साथ भाषा की सरलता का समन्वय मिलता है, वह अन्यत्र पाना दुर्लभ है। ठाकुर साहब से मेरा परिचय बहुत पुराना नहीं है। उनकी कविता ने मुझे उनसे मिलने को प्रेरित किया। ठा० साहब से उनकी ६२ वीं वर्षगाँठ जब ठाकुर रणञ्जय सिंह के सभापतित्व में प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन-संग्रहालय में मनाई जा रही थी, मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ और तब से अब तक उनके साथ

कम-से-कम ३६ बैठकें हो चुकी होंगी, जिनमें इस इण्टरव्यू वाली बैठक भी शामिल है। मैं ज्यों-ज्यों उनके निकट पहुँचा, उनके स्नेह ने मुझे जीता और मैंने अपनी पुस्तक की सूची के अनुसार एक इण्टरव्यू उनका भी लिया।

मेरी बैठक उनके बँगले के बाहरी दालान में ही सदा हुई, इसलिए उनके कक्ष का वातावरण और उनकी अपनी रुचियों का आभास मैं नहीं ले सका। बंगला अवश्य अच्छा-खासा है। कमरों में कालीन की बुनाई की टाइल्स लगी है। फुलवारी की शोभा उल्लेखनीय नहीं।

सियारामशरण गुप्त

राष्ट्र-कवि पद्मभूषण मैथिलीशरण गुप्त के कनिष्ठ भ्राता श्री सियाराम-शरण गुप्त साहित्य के क्षेत्र में ठीक उसी प्रकार से अपने भाई के पीछे-पीछे और कुछ अर्थ में आगे भी है, जिस प्रकार राम की लीलाओं के साथ में लक्ष्मण थे। सियारामशरण जी की प्रतिभा तथा उनका तेज स्वतन्त्र रूप मे इतना महत्त्व रखता है कि यदि वे मैथिलीशरण जी के छोटे भाई न होकर अन्य कही प्रफुल्लित होकर अपने काव्य-सौरभ को बिखेरते तो निस्सन्देह एक और स्थान भी साहित्य-प्रेमियों के लिए वैसा ही तीर्थ-स्थान होता जैसा कि आज चिरगाँव है।

'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर'—सियारामशरण गुप्त की इस अमर पंक्ति ने सर्वप्रथम सन् १६३६ में मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव डाला कि १४ वर्ष बाद भी मुझे इस कविता के लिखनेवाले कवि को व्यक्तिगत रूप से देखने की लालसा बनी रही और ८ मार्च, १६५३ को मैं इस महान् कवि का उनके निवास-स्थान चिरगाँव में दर्शन कर धन्य हुआ।

दोपहर के ठीक दो बजे मैं चिरगाँव में लारी से उतरा। पास ही मुझे एक बनिए की दुकान दिखाई दी। मैंने उससे गुप्तजी का निवास-स्थान

पूछा। उसने ऊपर से नीचे तक मुझे देखकर चमकती आँखों से मुस्कराते हुए पूछा—'आप कहाँ से आ रहे हैं ?' मैंने उत्तर दिया—'प्रयाग से।' उसने सिर हिलाते हुए कहा—'अच्छा, कोई साहित्यिक कार्य होगा।' मैं हँस पड़ा। मैंने सोचा कि क्या प्रयाग से आनेवाले सब साहित्यिक ही होते हैं। मैंने मुस्कराते चेहरे से उसकी बात का समर्थन किया और उसने उनके घर का सीधा रास्ता बता दिया। मैं एक बड़े सफेद फाटक की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचकर मुझे वहीं के एक विद्यार्थी से फिर कुछ माग-निर्देशन लेना पड़ा। उसने बड़ी श्रद्धा से मुझे उनका घर बता दिया और ठीक दो बजकर पाँच मिनट पर मैं गुप्तजी के स्थान पर पहुँच गया। मकान उनके घर की पुरानी रईसी बता रहा था। बाहर की ओर बड़ा भारी कच्चा आंगन था जो गोबर से खूब अच्छी तरह लीपा गया था। कुछ दूर पर एक कुँआ भी था। स्वच्छता स्थान-स्थान पर दिखाई दे रही थी। मैंने सामने के कमरे में जैसे ही प्रवेश किया, फर्श पर सफेद धुली चादर, आलमारियों में पुस्तकों की पंक्तियाँ और खाट पर सोते हुए एक बूढ़े-से व्यक्ति दिखाई दिए। कमरे में और बाहर के आंगन में पूरा सन्नाटा था। मैं इधर-उधर ताक रहा था कि कोई व्यक्ति दिखाई दे तो उससे गुप्तजी को पूछूँ, किन्तु कोई भी न दिखाई दिया। थोड़ी देर में एक अधेड़-स्त्री कुँए पर पानी भरने आई। सोचा—चलो, शायद यह कुछ बता सके, किन्तु मैं उस ओर बढ़ा ही था कि मुझे आंगन में ही खाट पर एक दुहरे बदन के सज्जन सोते हुए दिखाई दिए। मैंने सोचा, इन्ही को जगाया जाए। कुछ संकोच भरे रूप में मैंने उनके बदन से हाथ लगाकर कहा—'जरा सुनिएगा।' वह महाशय तुरन्त उठकर बैठ गये। उनसे बात करने पर मुझे विदित हुआ कि वे मैथिलीशरण जी के भतीजे थे। उन्होंने बताया—'आजकल मैथिलीशरणजी दिल्ली गए हुए हैं और सियारामशरणजी सो रहे हैं। थोड़ी देर में जागने का समय हो रहा है।' मैं कुछ समय तक उन्हीं की चारपाई पर बैठकर सियारामशरणजी के जागने की प्रतीक्षा करने लगा। फिर मैं उस लम्बे कमरे

में पहुँचा जहाँ गुप्तजी सो रहे थे। गुप्तजी के उस कमरे के बगल में ही एक दूसरा कमरा था जिसमें अनेकानेक ग्रन्थ; जैसे विश्वकोष, हिन्दी शब्द-कोष,बंगला भाषा शब्द-कोष, उर्दू तथा फारसी के लुगद, अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, गीता तथा अन्य इसी श्रेणी की मोटी-मोटी पुस्तकें शोभायमान थीं। एक ओर बैटरी से चलनेवाला एक रेडियो-सेट रखा हुआ था। कमरे में एक तख्त बिछा था, जिसपर अनेक पत्र-पत्रिकाएँ, जो सम्भवत: भारत के प्रत्येक कोने से आई, पड़ी हुई थीं। इन पत्रिकाओं को थोड़ा उलट-पुलटकर देखने से विदित हुआ कि वे केवल हिन्दी भाषा की ही नहीं, अन्य प्रादेशिक भाषाओं की भी हैं।

गुप्तजी फर्श पर बिछी चादर पर सो रहे थे और उनके ठीक बगल में पुस्तकों की उतनी लम्बी कतार जमीन पर लगी हुई थी जितने लम्बे वह स्वयं हैं। इन पुस्तकों में अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य की चुनी हुई पुस्तकें संकलित थी। मैं इन पुस्तकों से थोड़ा हटकर गुप्तजी के जागरण की प्रतीक्षा करने लगा। पचपन मिनट की प्रतीक्षा के बाद उनकी आँखें खुलीं और उन्हें मेरे आने की सूचना मेरे सामने ही दी गई। मैंने अपने स्थान से उठकर तुरन्त उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने मुझे अपने निकट बुला लिया। प्रयाग से प्रकाशित होनेवाली मेरी पत्रिका 'कल्पना' गुप्तजी के पास प्रतिमास भेजी जाती थी, अत: मैंने उनको उसका हवाला देते हुए अपना परिचय दिया। उन्होंने कहा—"कहिए कैसे कष्ट किया? 'कल्पना' का नाम आपका पर्याप्त परिचय है।"

मैं हँस पड़ा और फिर उनसे कुछ साहित्यिक वार्ता छेड़ने की मैंने आज्ञा मांगी। उन्होंने हँसते हुए कहा—"मैं अभी सोकर उठा हूँ और आप ठहरे पत्रकार, सो पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर देने के लिए मुझे थोड़ा सावधान होने दीजिए।" मुझे उनकी बात पर फिर हँसी आई और मैंने कहा—"बात तो किसी सीमा तक ठीक कह रहे हैं, किन्तु मेरे प्रश्न बहुत

ही साधारण है और साथ ही कठिनाई कुछ ऐसी भी है कि मुझे आज ही शाम की गाड़ी से प्रयाग लौट जाना है।" गुप्तजी ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो फिर आप सहर्ष अपनी वार्ता छेड़िए।" और मैंने उनसे प्रश्न करने शुरू किए।

वृन्दावनलाल वर्मा

वर्माजी का नाम तो बहुत दिनों से सुनता आया था और उनका साहित्य पढ़ने का चाव भी बहुत रहा। कितने ही उपन्यास उनके पढ़े, किन्तु साक्षात्कार सर्व प्रथम अतर्रा (उत्तर प्रदेश) के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में मुझे हुआ। जैसा परिपक्व नाट्य-साहित्य, कल्पनायुक्त कथा-साहित्य और तथ्यपूर्ण सामग्री से मण्डित उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं, वैसा ही पुष्ट उनका व्यक्तित्व भी देखने को मिला। ६४ वर्ष की आयु में भी वे इतने स्फूर्तिमय दिखाई दिए जितना कि एक ३० वर्ष का पट्ठा। मुझसे परिचय होने के थोड़ी ही देर बाद उन्होंने मेरी दुबली-पतली बाँहों को टटोला और कहा—"हमारे नवयुवकों की यही दशा रही तो हमारा इतिहास आगे न बढ़ कर केवल अतीत का ही रह जायगा।" उन्होंने अपनी बाँहों को खोलकर मुट्ठी कसी और बोले—"इसे दबाओ।" मैंने सकोच किया और वे आगे बोले—"प्रौढ़ साहित्य बुढ़ापे में ही लिखा जाता है और जिसके लिए ऐसे ही हाथों की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक नवयुवक को थोड़ी बहुत देशी कसरत करनी चाहिए।" अतर्रा के ही सम्मेलन मे मुझे उनके पाण्डित्यपूर्ण भाषण को सुनने का अवसर भी मिला और तभी मैंने उनसे एक साहित्यिक भेंट लेने का निश्चय किया। तब से लगभग एक वर्ष बीत जाने के बाद १७ मार्च १९५६ को झाँसी में मैंने उनका इण्टरव्यू लिया और उन्ही का मेहमान हुआ।

झाँसी में वृन्दावनलाल जी के तीन स्थान हैं। प्रथम उनकी बड़ी कोठी जिसमें वे शायद ही कभी मिलते हैं (झाँसी से दो बार मुझे इसी

कोठी से टक्कर खाकर लौटना पड़ा था) । दूसरा स्थान उनका स्वाधीन प्रेस है यहाँ यदाकदा वे मिलते हैं और तीसरा है उनका सदर बाजार का नया बंगला । इस बंगले के सन्नाटे में ही वे अपनी साहित्य-साधना करते हैं । मेरी भेंट इसी बंगले में हुई । वहाँ का वातावरण विशेष उल्लेखनीय नहीं है ।

राहुल सांकृत्यायन

स्वतन्त्रता के बाद ही राहुल जी जब रूस से भारत आए तो उनकी चर्चा से हिन्दी के पत्र जगमग होने लगे। हृदय में लालसा हुई कि राहुल जी से कभी ऐसा अवसर पाता जब उनसे कुछ साहित्यिक चर्चा कर उनके कुछ व्यक्तिगत विचार उनके ही श्रीमुख से सुनता और साथ ही उनसे कुछ ऐसे प्रश्न भी करता जो मुझे प्रायः कुरेदते रहते हैं । राहुल जी के लेख सामयिक पत्रों में बहुत पढ़े और साथ ही उनकी कुछ-एक पुस्तकें अवलोकन करने का सौभाग्य भी हुआ, किन्तु मेरी तृप्ति इससे न हो सकी । इस पुस्तक की योजना बनने पर पत्र-व्यवहार शुरू किया और १५ जून १९५५ ई० को मैं सपत्नीक इलाहाबाद से देहरादून जाने वाली गाड़ी पर जा बैठा । मसूरी में राहुल जी से मिलने के लिये इससे अच्छा समय हम मैदान में रहने वालों के लिये कौन-सा हो सकता था ? देहरादून पहुँच कर दो दिन हम लोग भाई सत्येन्द्र शर्मा एम० ए० के अतिथि रहे । मसूरी चलने का विचार उनका भी था, किन्तु वे हमारे साथ नहीं चल सके । २० ता० को बस से हम मंसूरी के लिये रवाना हुये । लगभग २½ घंटे की मनोरम यात्रा के बाद हमारी मोटर किंगग्रेव की ठंडी हवाओं के बीच पहुँच गई । मोटर के बाहर पैर रखते ही चिथड़ों में सुशोभित पहाड़ी कुलियों ने हमारे बोझ को अपनी पीठ पर लादने की परेड शुरू कर दी। रईसों की डाँट और फटकार कुलियों को फूल-मालाओं की तरह पहनता देखकर मेरा हृदय बोला—'शिखर का आधार वह अंधेरी घाटी है जहाँ कल तक हम सब थे ।'

किंगग्रेव से मुझे सर्व प्रथम लाण्ढौर बाजार जाना था । घूमने के विचार से यह स्थान अधिक सुविधाजनक है । लाण्ढौर बाजार पहुँचने के मार्ग में मसूरी की खास सड़क, माल रोड घूमने का अवसर मिला । फैशन के ऐसे-ऐसे नमूने देखने मे आए कि बम्बई की मैरीन ड्राइव और कलकत्ते की चौरंगी भी फीकी पड़ गई । दिल्ली का कनाट प्लेस अवश्य ही कुछ टक्कर ले सकता था ।

२१ ता० को प्रातः ही में सपत्नीक राहुल जी के यहाँ पहुँचा । हैपी वली में सभवतः अन्तिम बँगला है, जिसमें राहुल जी अपनी पत्नी कमला परियार, पुत्री जया और पुत्र जयता के साथ रहते हैं । उनके परिवार म एक विकट जीव 'भूतना' है । किसी भी अनजान व्यक्ति को देखते ही वह बुरी तरह से स्वागत करने लगता है । हम लोग भी क्षम्य नही हुये । 'भूतना' ने भौकना शुरू किया । डरते-डरते आगे बढ़े तो देखा कुत्ता जंजीर से बँधा है । हम लोगों ने राहुल जी के कमरे में प्रवेश किया । पं० जयगोपाल जी, जो पहले से उनके यहाँ रुके थे, इसी समय बाहर निकले और उन्होंने हम लोगों का परिचय राहुल जी को दिया । मेरी पत्नी उस समय कमला जी द्वारा अन्दर बुला ली गईं और मैं राहुल जी के पास बैठा । दो अन्य सज्जन, जो मुझसे पहले से वहाँ बैठे थे, राहुल जी से किसी विषय पर वार्ता करते रहे। राहुल जी ने मुझसे अपने पुस्तकालय में बैठने को कहा । मैं तुरन्त ही पुस्तकालय में चला गया । यहाँ डा० शिवगोपाल जी मिश्र 'नई-धारा' की फाइलों से कुछ खोज-बीन कर रहे थे । पूछने पर विदित हुआ कि निराला जी-सम्बन्धी जो कुछ भी उन्हें मिल रहा है, वह नोट कर रहे हैं । मैंने पुस्तकालय की आलमारियों पर दृष्टि दौड़ानी शुरू की । हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी और अँग्रेजी व रूसी साहित्य की शायद ही कोई ऐसी पुस्तक हो जिसका अपना स्थान बन चुकाहो और वह वहाँ न हो । उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य,

निबन्ध और अभिनन्दन-ग्रन्थ आदि सभी चुने हुये लगे थे। दर्शन-शास्त्र और धार्मिक ग्रन्थों का तो वहाँ बाहुल्य था। एक ओर खुली आलमारी पर सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की गड्डियाँ रखी थीं। भारतवर्ष भर के सभी प्रमुख पत्र देखने को मिले। विदेशी पत्रों में चीन और रूस के सचित्र पत्र मुख्य रूप से थे। एक आलमारी में राहुल जी की अपनी पुस्तकें रखी देखीं। ये कई भाषाओं में थीं, जैसे अँग्रेजी, रशियन, हिन्दी, गुजराती और बँगला आदि। मैं पुस्तकालय की आलमारियों के साथ-साथ ठीक उसी प्रकार से रुकता हुआ घूम रहा था जिस प्रकार से कोई किसी अजायबघर में घूमता है। मैंने वैसे तो अनेक साहित्यकारों के अपने पुस्तकालय देखे हैं, किन्तु जो विशेषता राहुल जी के पुस्तकालय में मिली वह अन्य के यहाँ नहीं। सामयिक पत्रों की गड्डी से दो-एक पत्र उठा कर मैं उन्हें देखने लगा। अवलोकन प्रारम्भ ही किया था कि राहुल जी की साली अथवा यों कहिये कमला जी की छोटी बहिन गंगा दिखाई दी। मैंने राहुल जी की पुस्तक 'मेरी जीवन यात्रा' देखने की इच्छा उससे प्रगट की। थोड़ी ही देर में उसने मुझे पुस्तक अन्दर से लाकर दी। मैंने उसे पढ़ना शुरू किया। थोड़ा ही पढ़ पाया था कि राहुल जी ने मुझे अपने कक्ष मे बुलाया। मै पुस्तक को बन्द कर तुरन्त उनके कक्ष में पहुँचा। वे अपने हिन्दी के टाइपरायटर पर कुछ पिटपिटा रहे थे। जैसे ही मुझे खड़ा देखा अपना काम रोक कर अपनी कुर्सी मेरी ओर घुमाते हुये बोले—'बैठिये।' मैं एक कुर्सी पर बैठ गया। उन्होंने पूछा—'कैसे कष्ट किया ?' मैंने राहुल जी के यहाँ पहुँचने के पहले उनसे कुछ पत्र-व्यवहार भी किया था जिसमें इण्टरव्यू लेने की चर्चा कर चुका था, फलत: मैंने अपने पत्रों का हवाला दिया और वे मेरा मन्तव्य समझ गये। वे बोले—'आप प्रश्न कीजिये, जिसका उत्तर देना उचित समझूँगा दूगा, अन्यथा कहूँगा कि मेरी अमुक पुस्तक पढ़िये।' मुझे इस शर्त पर आपत्ति ही क्या हो सकती थी ? मैंने प्रश्न करने शुरू किये।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि निराला के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य मुझे पिछले ८ वर्षों से रहा है। यों तो मेरे सम्पर्क के प्रारम्भ से ही निराला जी का स्वास्थ्य चिन्ताजनक रहा, किन्तु जब कभी उनकी मुद्रा अच्छी रही उन्होंने मुझे बहुत-सी दीक्षाएँ दीं। शब्द के उच्चारण को निराला जी विशेष महत्त्व देते हैं, अतः एक-एक शब्द को प्रायः पच्चीस-पच्चीस बार मैंने उनके सामने उच्चरित किया है। निराला जी ने प्रायः अच्छे प्रोफेसर की भाँति तुलसीदास, कालीदास, टैगोर, शेक्सपियर और मिल्टन की कृतियों की तुलनात्मक विवेचना हम लोगों के सम्मुख की है और बैठे-बैठे बहुत-सी वे मूल्यवान बातें बताई हैं जो सम्भवतः वर्षों के अध्ययन-मनन करने पर भी न मिलतीं। उनकी यह सीख कि 'जितना लिखो, उसका दस गुना पढ़ो' मेरा गुरुमन्त्र बन चुका है। निराला जी के साथ मुझे कलकत्ते में उनका अभिनन्दन-समारोह देखने का अवसर भी मिला और इस सम्बन्ध में मैंने एक लेख दैनिक हिन्दुस्तान में लिखा था। निराला जी की बहुत प्रकार की दावतें भी मैंने खाई हैं। इतना स्नेह पाते हुए मेरे मस्तिष्क में जब इण्टरव्यू की पुस्तक की योजना आई तो फिर जिज्ञासावश मैंने उनसे कितने ही प्रश्न किए और जिनके उत्तर बिखरे हुए रूप में मुझे मिले। मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर या तो अँग्रेजी में मिले हैं अथवा बैसवाड़ी बोली में। पाठकों की सुविधा के लिए मैंने खड़ीबोली में लिपिबद्ध किया है। इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि प्रश्न के उत्तर लिखने में इस बात की पूर्ण सतर्कता रखी गई है कि कोई भी बात ऐसी न हो जो मूलरूप से भिन्न हो।

निराला जी का निवास-स्थान कला मन्दिर एक सकरी गली में है, जहाँ सूरज की किरण शायद ही कभी पहुँच पाती है। उनका कमरा भी बहुत बड़ा नहीं है। इस कमरे में एक ओर उनकी चारपाई पड़ी है।

चारपाई से लगी हुई ही दीवाल की आलमारी है जिसमें १६,२० पुस्तकें, दो-तीन कापियाँ, एक सादी-सी कलम, एक दावात और थोड़ी-सी तम्बाकू की पत्तियाँ प्रत्येक समय दिखाई दे सकती हैं। निराला जी के सिरहाने गाँधी जी का एक बड़ा-सा चित्र लगा है और बगल में ही एक दीवाल घड़ी है जो प्रायः बन्द रहती है। कमरे में एक कुर्सी और एक छोटा तख्त पड़ा है जिसमें आने-जाने वाले व्यक्ति आकर बैठते हैं। इसी वातावरण में मने महाकवि से मिल कर उनका इण्टरव्यू तैयार किया।

सुमित्रानन्दन पंत

पंत जी की प्रतिभा से हिन्दी-जगत् का कौन व्यक्ति होगा जो परिचित नहीं। उनकी कविताओं से मोह, बहुत दिनों से मुझे रहा; साथ ही उनका अपना रूप-रंग और शृंगार भी ऐसा था कि जब कभी उनका चित्र कहीं देखने को मिलता था तो हृदय में यह लालसा होती थी, ऐसे अनोखे और प्रतिभाशाली व्यक्ति से अवश्य ही व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करना चाहिए। सन् १९५० में जब मैं 'कल्पना' पत्रिका का सम्पादन प्रयाग से कर रहा था तो उसके लिए उनसे एक कविता लेने जार्जटाऊन के बंगले में गया। उस पहली भेंट में ही जिस सहृदयता का परिचय मुझे मिला वह अविस्मरणीय है। उन्होंने अपनी एक कविता दी। उस दिन के बाद से फिर मे कई बार उनसे मिला और 'कल्पना' के अंक बराबर उन्हें देता रहा। चार-पाँच महीने के अंक देखने के बाद उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में पत्रिका पर सम्मति दी—

"कल्पना के कुछ अक मने देखे। यह साहित्य तथा कला-प्रधान मासिक पत्रिका है। इसके सम्पादक उत्साही व्यक्ति हैं। 'कल्पना' उनकी कलाप्रियता तथा सुरुचि की द्योतक है। इसमें उनके लब्ध-प्रतिष्ठित लेखकों की कृतियाँ प्रकाशित होती हैं। लेखादि सुन्दर हैं। इसके सम्पादक

इसे और भी अधिक उन्नत बनाने के प्रयत्न में अविराम-रूप से संलग्न हैं। मैं उनकी सफलता चाहता हूँ।"

इतने शब्द उनके उदारहृदय का पर्याप्त परिचय करा सके। तब से मेरी जिज्ञासा उनकी ओर और भी बढ़ी और इस पुस्तक की योजना बनने पर मैंने उनसे समय माँगा। रेडियो के कार्यक्रमों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण बहुत-से दिन नियुक्त हुए और टल गए। लगभग एक वर्ष इसी प्रकार बीत गया और फिर २७ जुलाई १९५४ को म यह कार्य पूरा कर पाया। इस अवसर पर मेरे मित्र डा० शिवगोपाल मिश्र व पं० जयगोपाल मिश्र भी थे। यह इण्टरव्यू लगभग तीन घण्टे चला, जिसे जयगोपाल जी ने अपनी तेज लेखनी से नोट किया। मैं इस कार्य के लिए उनका आभारी हूँ। इस इण्टरव्यू में जो कुछ दिया गया है उसके अतिरिक्त और भी पंत जी ने बहुत-सी बातें बताईं, जो हम लोगों के लिए बहुत ही उपादेय थीं।

पंत जी का अतिथि-कक्ष अत्यन्त सुन्दर सोफे से सुसज्जित था और एक सुन्दर-सी तिपाई बीच में रखी थी। तिपाई पर फूलों का एक सुन्दर-सा गुच्छा फूलदान में लगा था। दीवाल पर एक ओर महात्मा गाँधी का चित्र रजतपत्र में अंकित किया हुआ शीशे में जड़ा था। कुर्सियों और सोफे पर सेंमर की रूई के गद्दे लगे थे। एक ओर एक बुक-शेल्फ में कुछ किताबें लगी थीं और एक दीवाल की ओर बड़ा-सा रेडियो-सेट रखा था। कमरा बिल्कुल टिपटाप दिखाई दिया।

डा० रामकुमार वर्मा

एकांकी-सम्राट् डा० रामकुमार वर्मा के निकट बैठने-उठने का मुझे अवसर सर्व-प्रथम १९४९ में मिला। मैं अपनी पत्रिका 'कल्पना' का अंक लेकर उनके पास गया था और तब से इतने अधिक सम्पर्क में रहा कि उनके चारों ओर का वातावरण अपने में बहुत कुछ विशेषता रखता

हुआ भी मेरे लिए तना साधारण हो गया कि अब उसकी चर्चा करने में भी मुझे बनावट मालूम होती है। अधिक दिन की बैठकबाजी में बहुत तरह की बातें हुईं और एक दिन परिवार और सम्बन्धियों की बात छिड़ने पर मुझे यह पता चला कि डा० साहब मेरी पत्नी के मौसा जी हैं। रिश्ता दूर से लगा था, किन्तु व्यक्तिगत व्यवहार रिश्ते से अधिक कार्य कर रहा था। इसलिए इस नई खोज के बाद एक नयापन आ गया। डा० साहब ने कुछ दिन बाद ही अपने एक लेख में इस सम्बन्ध की चर्चा भी की।

मैं आरम्भ से ही डा० साहब की कविताओं और नाटकों का अच्छा पाठक था, फलतः इस पुस्तक की योजना बनने पर उन्हें सूची में रखना बहुत ही स्वाभाविक हुआ।

जिसके यहाँ ऐसा सम्बन्ध हो उससे यह कहना कि मैं एक इण्टरव्यू लेना चाहता हूँ एक अजीब-सी बात थी। कई दिन इस भेंट की चर्चा को छेड़ने के विचार से गया, किन्तु संकोच के कारण चुप ही रह गया, पर इससे काम चलना कठिन था, फलतः एक दिन अचानक मेरे मुँह से निकला—"डा० साहब मैं आपसे एक साहित्यिक भेंट करना चाहता हूँ।" डा० साहब जोर से हँसे और बोले, "रोज की भेंट में साहित्यिक चर्चा नहीं होती क्या ?" मैंने कहा—"रोज की बात तो दाल-भात है, मैं कुछ स्पेशल चाहता हूँ।" डा० साहब ने कहा, "बहुत अच्छा"। इस भेंट का दिन रविवार तै हुआ और मई ५४ के एक रविवार को मैं अपने मित्र जयगोपाल जी के साथ इन्टरव्यू लेने पहुँच गया। यह इण्टरव्यू बड़े इत्मीनान से लिया गया, फलतः लगभग ४ घन्टे की बैठक हुई। इस बैठक में प्रस्तुत पुस्तक के अन्दर दिये गए अंश के अतिरिक्त और भी बहुत से मूल्यवान संस्मरण सुनने को मिले।

डा० साहब के घर का वातावरण बहुत शान्त है और उनके ड्राइंगरूम में आपको 'पॉलिश्ड सिम्प्लीसिटी' मिलेगी। दो सेट सोफे। एक ओर उनके

माता-पिता के दो बड़े-बड़े तैल चित्र, एक ओर उनका और उनकी पत्नी का तैल चित्र, एक कोने में टेलीफोन और रेडियो, एक दीवाल पर 'झाँसी की रानी' का और एक ओर शंकर-पार्वती का बड़ा-सा चित्र दिखाई देगा। इन सब के अतिरिक्त ड्राइंगरूम में तीन अभिनन्दन-पत्र भी दृष्टिगत होते है, जो डा० साहब को उनकी जयन्ती-समारोह में प्रयाग और जौनपुर के साहित्यकारों की ओर से भेंट किये गए हैं।

ड्राइंग-रूम के बगल में उनका अध्ययन-कक्ष है। इसी कक्ष के ठीक नीचे डा० साहब का अपना पुस्तकालय है। अध्ययन-कक्ष और पुस्तकालय की पुस्तकों की संख्या तीन-साढ़े तीन हजार से कम न होगी। डा० साहब की कृपा से मुझे इन पुस्तकों को उलटते-पलटते रहने का बराबर अवसर मिला है। निश्चय ही डा० साहब का संग्रहालय अमूल्य साहित्य का भण्डार है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

व्योमकेश शास्त्री, शास्त्राचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेख सामयिक पत्रों में अपने छुटपन से ही देखता आया था और निस्संदेह वे इतने सारगर्भित देखने को मिले कि हृदय में अनायास श्रद्धा और पूजा की भावना भर गई। लालसा लगी थी कि द्विवेदी जी से कभी मिलूँ, किन्तु जब इस पुस्तक की योजना बनाई तब तो फिर बहाना ही बन गया। पत्र-व्यवहार करने से यह भी आभास मिला कि द्विवेदी जी रूखे व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु हाँ, अधिक कार्यव्यस्त होने के कारण वे मुझे जल्दी समय न दे पाए। प्रथम पत्र जाने की तिथि से लगभग तीन महीने बाद इण्टरव्यू प्राप्त करने की तिथि निश्चित हो पाई, किन्तु काशी पहुँचने पर भेंट कठिनाई से हो सकी। तीन बार गोदौलिया से लंका गया और आया, तब कहीं दूसरे दिन प्रातः चौथी बार जाने पर भेंट हुई।

छोटे से बँगले के चारों ओर फुलवारी लगी थी। अतिथि-कक्ष में प्रविष्ट होने पर एक स्थान पर एक छोटा-सा तख्त था। उस पर स्वच्छ

चादर बिछी थी । कुछ-एक मोटे-मोटे ग्रन्थ गोल तकिए के पास रखे थे। चारों ओर की दीवालों पर कुछ कलात्मक चित्र लगे थे। दिसम्बर '५५ की ८ ता० के सुन्दर वातावरण में ठीक ९ बजे आचार्य जी ने कक्ष में पदार्पण किया। कुछ देर तक उन्होंने प्रयाग के साहित्यकारों की कुशलता पूछी, फिर मुझसे प्रश्न पूछने को कह दिया और मेरा कार्य शुरू हो गया। यह बैठक लगभग ढाई घण्टे की हुई।

महासंत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी जी को इस पुस्तक में जोड़ने के सम्बन्ध में मुझे कुछ विशेष बातें कहनी है और इसका भी विशेष कारण है।

मेरी इस पुस्तक के पूर्ण होने तक प्रायः अपनी मित्र-मण्डली में और साहित्य-गोष्ठियों में मुझसे लोगों ने यह प्रश्न किया कि साहित्यकारों के बीच प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को लाने की क्या आवश्यकता थी ?

व्यक्तिगत रूप से जिससे भी मेरी बात हुई,, मैंने उसे संतुष्ट करने का प्रयास किया और ऐसे ही कुछ कारणों से यहाँ पर भी स्पष्टीकरण कर रहा हूँ। सम्भव है कुछ पाठकों के मन में वे ही विचार उठें, जो मेरे अन्य साहित्यिक मित्रों के हृदय में उठे थे।

मै जैसे वातावरण में पैदा हुआ और पला हूँ, वहाँ बाबा-भिक्षुओ को अधिकतर श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था, किन्तु ज्यों-ज्यों मैं बड़ा होता गया और मेरा स्वतन्त्र अनुभव हुआ, मैं इस प्रकार के वेशधारियों से चिढ़ता ही गया। कुछ-एक ऐसी घटनाएँ अपनी आँखों से देखीं जिससे साधुओं से मुझे विशेष चिढ़ हो गई। ऐसी दशा में ब्रह्मचारी जी की ओर आकृष्ट होना मेरे लिए कभी भी सम्भव नहीं था और शायद ऐसे ही कुछ कारणों से हमारे नवजवान मित्रों को भी मुझसे यह पूछना पड़ जाता है कि ब्रह्मचारी जी को इस पुस्तक मे क्योंकर जोड़ा गया।

ब्रह्मचारी जी की कथा-वार्ता प्रायः प्रयाग के धार्मिक संस्थानों में सुनी और उससे प्रभावित भी हुआ, किन्तु अन्दर से हृदय इतना खिन्न था कि सब कुछ सुन कर भी उनकी ओर से सुप्त हो जाता था।

पिछले निर्वाचन (१९५२) के समय उनका नाम बड़े जोरों से कानों में गूँजा, क्योंकि पं० जवाहरलाल जी नेहरू के मुकाबले में वे निर्वाचन के लिए खड़े हुए। मैं हिन्दू कोडबिल के पास कराने वालों के समर्थकों में नहीं था फिर भी ब्रह्मचारी जी का यह कार्य कि वे जवाहरलाल जी का विरोध करें मुझे असह्य-सा हुआ। राजनीति के क्षेत्र में, निर्विवाद सत्य है कि नेहरू जी का और ब्रह्मचारी जी का कोई भी साम्य नहीं। खैर, निर्वाचन हुआ और नेहरू जी जीते, किन्तु कान खड़े करने की सबसे बड़ी बात यह हुई कि ब्रह्मचारी जी ने इतने अधिक वोट पाए कि उनकी जमानत जब्त नहीं हुई। यह एक बहुत बड़ी बात थी। मैंने अब ब्रह्मचारी जी को अधिक-से-अधिक जानने का प्रयास किया और एक दिन मेरे हाथ में संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) की ओर से प्रकाशित एक पुस्तिका हाथ लगी। उसमें ब्रह्मचारी जी द्वारा लिखित सभी पुस्तकों का विज्ञापन था। मैंने उसे आद्योपान्त पढ़ा। उसके अन्दर ब्रह्मचारी जी की कृतियों के ऊपर कुछ ऐसे विद्वानों की पुष्ट सम्मितियाँ थीं, जो मेरे बहुत बड़े श्रद्धा के पात्र थे।

पं० अमरनाथ झा के ये शब्द--

"श्री भागवत दर्शन के कुछ खण्ड पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। भारतीय संस्कृति के आदर्शों का ज्ञान इन कथाओं से अच्छा मिलता है।...... ब्रह्मचारी जी ने इन्हें लिख कर शिक्षार्थियों का बड़ा उपकार किया है।"

और डा० रामकुमार वर्मा के ये शब्द-

"......ब्रह्मचारी जी की प्रभावशालिनी लेखनी से मैं परिचित हूँ। जिस सरलता और दृढ़ विश्वास से वे धार्मिक इतिवृत्त लिखते हैं, वह

हिन्दी के आधुनिक धार्मिक साहित्य में अद्वितीय है। आधुनिक शिक्षा ने जनता को हमारे सांस्कृतिक ज्ञान से बहुत दूर हटा दिया है। आज धर्म परिहास और विनोद का विषय बन रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे दर्शन और धर्म की कथाएँ पूण विश्वास और शक्ति के साथ लिखी जाएँ।······मैं ब्रह्मचारी जी से प्रार्थना करूँगा कि वे इस अमर साहित्य से देश का कल्याण करें।"

साथ ही डा० कैलाशनाथ काटजू, श्री आर० डी० रानाडे और श्री सम्पूर्णानन्द जी जैसे महानुभावों की सम्मतियाँ मुझे ब्रह्मचारी जी के साहित्य की ओर मोड़ने में पर्याप्त प्रभावित सिद्ध हुईं। अब मैंने ब्रह्मचारी जी के साहित्य की खोज कर उसे पढ़ना शुरू किया।

'मतवाली मीरा' के पदों के व्याख्याकार के रूप में, भागवती कथा जैसे धार्मिक उपन्यास के १०८ भाग के लेखक के रूप में और ६१७ पृष्ठ के श्री भागवत चरित जैसे महाकाव्य के निर्माता के रूप में मैंने उन्हें साहित्यकार स्वीकार किया है। हाँ, यह दूसरी बात है कि उनके साहित्य के अधिकतर पात्र वर्तमान युग के मनुष्य नहीं हैं।

इस पुस्तक में ब्रह्मचारी जी को जोड़ने का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि मैंने इसमें राहुल जी जैसे व्यक्ति को जोड़ा है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इस युग में हमारे सामने दो विशेष प्रवृत्तियाँ हैं और जिनमें से एक श्रेणी का प्रतिनिधित्व राहुल जी के द्वारा होता है और दूसरे का ब्रह्मचारी जी से। वैसे विषय की दृष्टि से राहुल जी ने बहुत प्रकार से हमारे ज्ञान-कोष में संवर्धन किया है, किन्तु दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र म हम इन दो विशिष्ट प्रकाश-स्तम्भ के निकट आकर एक नए मोड़ पर आ जाते हैं। हमको यह सोचना पड़ता है कि हम किस ओर बढ़ें। मैं चाहता हूँ कि हमारे पाठक एक बार ध्यान से सोचें कि आज हम किस मोड़ पर खड़े हैं।

ब्रह्मचारी जी रामायण और महाभारत की उस संस्कृति और उन नायकों से एक इंच आगे नहीं देखना चाहते जो आज से लगभग ५००० वर्ष पुराने हैं। वे उस कील को छोड़ना ही नहीं चाहते। दूसरी ओर राहुल जी आज के युग से भी आगे '२२ वीं सदी' की बातें करते हैं।

ब्रह्मचारी जी, जैसा कि आप पढ़ेंगे, रामायण की प्रत्येक घटना को १६ आना सही मानते हैं, जब कि राहुल जी रामायण की आधार-शिला राम को ही ऐतिहासिक पुरुष मानने के पहले कहते हैं—पहले तो हमें यह पता लगाना है कि राम काशी के थे अथवा अयोध्या के; कहीं दो राम तो नहीं हुए ?

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में कृष्ण के नाम के बहुत से नायक हुए हैं। राहुल जी को उनको अलग-अलग समझने की चिन्ता है, तो ब्रह्मचारी जी को केवल आनन्दकन्द यशोदानन्दन के कीर्तन से ही तृप्ति है।

कुछ विद्वानों का मत है कि यशोदा के कृष्ण, व्रज की गोपियों के कृष्ण और कंस का वध करने वाले कृष्ण एक हैं और महाभारत में गीता का उपदेश देने वाले कृष्ण दूसरे हैं, किन्तु ब्रह्मचारी जी दोनों को ही एक मानते हैं। राहुल जी को जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, वे इस विषय में भी खोज की आवश्यकता समझते हैं।

राम और कृष्ण जैसे पात्र जो भारतीय संस्कृति और प्राचीन साहित्य के आधार-स्तम्भ हैं वे एक की दृष्टि में भगवान् के अवतार और सर्वेसर्वा हैं, तो दूसरे की दृष्टि में या तो आदर्श महापुरुष अथवा व्यास और वाल्मीकि जैसे कथाकारों के काल्पनिक पात्र।

ऐसी स्थिति में इन दो भिन्न विचारधारा के साधकों का समन्वय मैंने आवश्यक समझा।

अपने-अपने क्षेत्र में योग्यता दोनों की ही अभूतपूर्व है। दोनों ने ही साहित्य का बहुत सृजन किया है। दोनों के ही ग्रन्थों के अनेकानेक

संस्करण हो चुके हैं और दोनों का ही साहित्य आज बिक रहा है। एक में आदर्श के प्रति निष्ठा-ही-निष्ठा है और दूसरे में निष्ठा के साथ तर्क का बाहुल्य है। उपयोगिता की दृष्टि से दोनों के ही विचारों का मूल्य है, किन्तु हम यदि समझ-बूझ कर दोनों को ही उचित अनुपात में अपना सके तो मेरे अपने विचार से समाज और साहित्य का अधिक कल्याण हो सकता है।

ब्रह्मचारी जी से इण्टरव्यू लेने के लिए १४ फरवरी १९५६ को प्रातः ६ बजे मैं त्रिवेनी घाट पर पहुँचा। वहाँ उनकी नौका में बैठा रहा, फिर महराज जी के साथ ही झूँसी पहुँचा। महराज जी उन दिनों मौन व्रत लिए थे, फलतः उन्ही ने मुझसे लिख कर कहा कि वे उस समय पूजा के लिए बैठने जा रहे हैं और अब वे ४ बजे संध्या को मुझे समय दे पाएँगे। मैंने घड़ी में देखा तो १०॥ बजे थे। उनकी आज्ञा मानना मुझे अनिवार्य था। मैं उनके प्रकाशन कार्यालय में बैठ कर उनका साहित्य पढ़ने लगा। लगभग १२ बजे भण्डारे से आदमी आया कि चलिए भोजन कर लीजिए। मुझे भूख जोर से लगी थी, तुरन्त उठ कर भण्डारे में जा पहुँचा। वहाँ एक पीढ़े पर मैं बैठा और मेरे सामने एक सकोरा तथा एक पत्तल डाली गई। रसोइए ने रहर की दाल मुझे परोसी। इस दाल में दाल के बीज ढूँढ़ना कठिन था। वह बिलकुल पतली बनी थी। उसके साथ मुझे मोटी। मोटी दो रोटियाँ मिली। ऐसे भोजन का मैं जरा भी आदी नहीं था, फिर भी किसी प्रकार एक रोटी को निगल गया। दिन भर पुस्तकों के अवलोकन में ही बीता। शाम को जब ४ बजे, तो, ब्रह्मचारी जी ने दो बड़े-बड़े अमरूद प्रसाद के रूप में मेरे पास भेजे। दोनों ही बहुत मीठे थे; मैं खा गया। तत्पश्चात् ही ब्रह्मचारी जी ने मेरे प्रश्नों को अपने हाथ में लेकर अपनी कलम से उत्तर लिखना प्रारम्भ कर दिया। मैं उनके आश्रम के शान्त वातावरण और गंगा के तट का सुख अपनी आँखों में भरता रहा। लगभग

डेढ़ घंटे में मुझे सभी प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में मिल गए। उसके बाद ब्रह्मचारी जी ने मुझसे बहुत से साहित्य-सम्बन्धी प्रश्न किए और जिनका उत्तर मैंने डरते हुए दिया। वे मेरे उत्तरों से प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने प्रकाशन कार्यालय में पुनः लाकर दस रुपए की पुस्तकें भेंट कीं और महात्मा कर्ण की जीवनी देकर उस पर अपने हस्ताक्षर करते हुए मुझसे अलग चिट पर कहा 'इसे अवश्य पढ़ियेगा।' मैंने कृतार्थ होकर सभी पुस्तकें अपने बगल में दबाई और उन्हें प्रणाम करके चला आया।

डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला की नोक-झोंक--

निराला जी का जो इण्टरव्यू मैंने दिया है उसके विषय में लिख चुका हूँ कि वह एक बैठक में तैयार नहीं हुआ। निराला जी से बहुत से ऐसे प्रश्न मैं करता रहा जिनका उत्तर उन्होंने बराबर टाल दिया। ऐसी स्थिति में मैं इस प्रयास में रहा कि कोई ऐसी युक्ति होनी चाहिए जिससे वे मेरे प्रश्नों से कतरा कर भागने न पायें। इस कार्य को सफल बनाने के लिए मैंने डा० रामकुमार वर्मा का सहारा लिया और--

१५ मई १९५० को मैंने महाकवि निराला और डा० रामकुमार वर्मा को अपने यहाँ भोजन के लिए आमन्त्रित किया। भोजन का समय ११ बजे दिन का दिया गया। निराला जी ९।। बजे ही आ गए, किन्तु डा० वर्मा १२ बज जाने के बाद भी नहीं आ पाए। इस पुस्तक में एक चर्चा इस दिन की है और दूसरी चर्चा २० अक्टूबर १९५३ की है जब कि डा० रामकुमार वर्मा निराला-परिषद् के सदस्यों के साथ में निराला जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल नेहरू से आनन्द भवन में मिले थे। सौभाग्य से मैं भी परिषद् द्वारा आमन्त्रित एक व्यक्ति था और इसलिए मैं एक और बैठक का प्रबन्ध अपने ही यहाँ करने में सफल हुआ। इस बैठक से सम्बन्धित लेख 'धर्मयुग' में प्रकाशित हो चुका है।

डा० साहब और निराला जी की पहली बैठक से सम्बन्धित मेरा लेख जब इन्दौर के 'नवप्रभात' में छपा था और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में निराला जी का इण्टरव्यू प्रकाशित हुआ था तो उसमें गोश्त खाने की चर्चा को देख कर कुछ लोगों ने मुझे पत्र लिखा था कि निराला जी जैसे व्यक्ति के लिए यह शोभा नहीं देता कि वे गोश्त खाएँ और यदि वे खाते भी हैं तो इसकी चर्चा नहीं होनी चाहिए। इस पुस्तक में भी यह चर्चा आई है, इसलिए इन विचारों के उत्तर में मुझे केवल दो बात कहनी है। पहली तो यह कि निराला जी ने आज तक अपनी किसी भी बुराई को छिपाने का ढोंग रचा ही नहीं है। वे जो कुछ हैं, सबके सामने हैं और खुले हृदय से हैं। दूसरी बात यह कि गोश्त खाना एक बुराई में गिना जाय, यह कभी भी उचित नही। यह तो रुचि की बात है।

पुस्तक में उपर्युक्त सभी साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वैसे ये सभी हिन्दी-आकाश के नक्षत्र हैं। इनसे कौन परिचित नहीं, किन्तु पाठक बहुत प्रकार के होते हैं, साथ ही पुस्तक अहिन्दी-क्षेत्र में विशेष उत्कण्ठा से पढ़ी जा सकती है। इसलिए ऐसे पाठकों का ध्यान रख कर मैंने संक्षिप्त जीवन-परिचय देना आवश्यक समझा।

नवयुवकों और हिन्दी-साहित्य व साहित्यकारों के प्रति विदेशी जिज्ञासुओं को इस पुस्तक में बहुत-कुछ मिलेगा।

मै पाठकों से निवेदन करना चाहता हूँ कि वे इस पुस्तक को पढ़ने के बाद अपने विचार मेरे पास भेजें। मै इस पुस्तक के बाद दूसरी भी लिखने की इच्छा रखता हूं। उसमें हिन्दी-जगत् के अन्य गण्य-मान्य साहित्यकारों के इण्टरव्यूज प्रस्तुत करूँगा। पाठक अपनी ओर से यदि कोई भी प्रश्न विशिष्ट साहित्यकारो के सम्मुख रखना चाहते हों, तो वे मुझे लिख भेजें। मै साभार उनका उपयोग करने का प्रयास करूँगा।

अन्त में मैं अपने साहित्यिक मित्रों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ जिनकी सराहना ने मुझे इस पुस्तक के पूर्ण करने की प्रेरणा दी। पुस्तक को सुन्दर रूप से प्रकाशित करने के लिए मै श्री लक्ष्मण दास व प्रह्लाद दास अग्रवाल का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया है।

कैलाश कल्पित

६५, चक, इलाहाबाद

"साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम-कदम पर आनेवाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले, तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या? जीवन की आलोचना कीजिए, चाहे चित्र खींचिए, आर्ट के लिए लिखिए चाहे ईश्वर के लिए, मनोरहस्य दिखाइए, चाहे विश्वव्यापी सत्य की तलाश कीजिए—अगर उसमें हमें जीवन का अच्छा मार्ग नहीं मिलता, तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, या अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊँचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान हैं।

—प्रेमचन्द्र

कविवर ठाकुर गोपालशरण सिंह

कविवर ठाकुर गोपालशरण सिंह

परिचय

आपका जन्म जनवरी १८९१ ई० में रीवाँ राज्य में हुआ। आप रीवाँ राज्य के गढ़ी क्षेत्र के जागीरदार हैं और द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि हैं। खड़ीबोली में आपकी कविता बहुत ही सरस एवं सरल भाषा में होती है। आपने गम्भीर-से-गम्भीर चिन्तन सरल-से-सरल और ओज-पूर्ण भाषा में प्रस्तुत किये हैं। आप प्रयाग के गूँगों-बहरों के स्कूल के संस्थापकों में से हैं। आप भारतीय साहित्य समिति, इन्दौर; श्री रघुराज साहित्य परिषद; रीवाँ, कवि समाज, प्रयाग आदि संस्थाओं के सभापति रह चुके हैं। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित विराट कवि सम्मेलन (१९२७) और ओरियंटल कान्फ्रेंस, मैसूर के बहु-भाषा कवि सम्मेलन (१९३५) में सभापति के आसन का सम्मान पाया। आप द्विवेदी-मेला, प्रयाग (१९३३) के स्वागताध्यक्ष नियुक्त हुए। रीवाँ राज्य (अब जिसका विलयन नए मध्य प्रदेश में हो गया है) के मंत्री-मंडल में भी सन् १९३२ से १९३४ तक रह चुके हैं। आपने हिन्दी साहित्य को गीत, काव्य और महाकाव्य से सिंचित किया है। आपको साहित्य-कारों की ओर से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना चल रही है।

आपकी पुस्तकों की चर्चा आपके ही श्रीमुख से प्रश्न-उत्तरों में पढ़िए। 'जगदालोक' नामक महाकाव्य पर उत्तर प्रदेश सरकार से आपको पुरस्कार मिल चुका है।

आजकल आप ५, महात्मा गाँधी मार्ग, सिविल लाइन प्रयाग में रह रहे हैं।

भेंट

प्रश्न--कविता करने की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली ? अपने यौवन-काल के कुछ उन साथियों के नाम बताएँ जो आपकी साहित्यिक गतिविधि से सम्बन्धित रहे हों।

उत्तर—मेरा बाल्यकाल साहित्यिक वातावरण में व्यतीत हुआ। मेरे पिता संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और काव्य और साहित्य से उन्हें बड़ा अनुराग था। उनके पास कवि और विद्वान बराबर आया करते थे; और साहित्यिक चर्चा तथा कविता पाठ नित्य ही हुआ करता था। श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकीय रामायण का पारायण प्रायः हुआ करता था। इनको मैं भी सुना करता था और उनसे प्रभावित होता रहा। मेरे पिता ने संस्कृत की एक पाठशाला भी खोल रखी थी और वहीं संस्कृत से ही मेरा विद्यारम्भ हुआ था। ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में ही मैंने किरातार्जुनीय आदि संस्कृत के काव्य पढ़ना आरम्भ कर दिया था। मेरी माता रामचरितमानस का पाठ किया करती थीं और मैं उसे भी सुना करता था। ऐसी स्थिति में कविता के प्रति मेरे मन में अनुराग उत्पन्न होना स्वाभाविक था। मैंने पहले कुछ पद्य ब्रजभाषा में लिखे थे, परन्तु सरस्वती पत्रिका में बाबू मैथिलीशरण गुप्त आदि की बोलचाल की भाषा में रचनाएं पढ़ कर मैं उस ओर आकृष्ट हुआ और स्वयं खड़ीबोली में कविता लिखने लगा। सौभाग्यवश 'ग्रन्थि' नामक जो पहली रचना मैंने बोलचाल की भाषा में लिखी थी, वह सन् १९१२ में सरस्वती में प्रकाशित हो गई। इससे मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला और उसके बाद मैं बराबर बोलचाल की भाषा में ही कविताएं लिखता रहा जो

सरस्वती में प्रकाशित होती रही। मैं शीघ्र ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कृपापात्र हो गया जिनसे मुझे निरन्तर प्रेरणा मिलती रही और कविता लिखने के लिए वे मुझे बराबर प्रोत्साहित करते रहे। मेरे उस समय के साहित्यिक मित्रों में पं० रामनरेश त्रिपाठी और पं० ब्रजमोहन व्यास थे और जब मैं प्रयाग आता था तब इन लोगों से बराबर सम्पर्क रहता था।

प्रश्न—आपने विशेषतः किस भावना से द्रवीभूत होकर कविताएँ लिखीं ? आपका अपना जीवन-दर्शन क्या रहा है ? साहित्यकार का दायित्त्व क्या है ? क्या प्रत्येक लेखक साहित्यकार है ?

उत्तर—कविता लिखने में मानव-जीवन से मुझे सदैव प्रेरणा मिलती रही है। मेरी कितनी ही रचनाओं में सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवन के चित्र मिलेंगे। मेरी प्रकृति-सम्बन्धी रचनाएँ भी मानव-जीवन से प्रभावित हुई हैं। देश की राजनीतिक स्थिति का भी स्वभावतः मेरी रचनाओ पर प्रभाव पड़ा है।

मेरा जीवन-दर्शन लोक-कल्याण है और साहित्यकार का दायित्त्व भी यही है कि मानव में लोक-कल्याण की भावना और सुरुचि उत्पन्न करे। जिस साहित्य मे लोक-कल्याण की भावना नहीं है अथवा जिससे स्वस्थ मनोरंजन नहीं होता वह सच्चा साहित्य नहीं कहा जा सकता।

प्रत्येक लेखक साहित्यकार नही कहा जा सकता। साहित्यकार की कोई स्थायी देन होनी चाहिए। लिखने का व्यवसाय करने वाला लेखक तो कहा ही जायगा, किन्तु प्रत्येक लेखक साहित्यकार भी हो यह आवश्यक नही।

प्रश्न—आपकी अब तक कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ? क्या वे सभी किसी विशेष ध्येय से लिखी गई हैं ? आपके विचार से सबसे

सुन्दर कृति आपकी कौन सी है ? किस पुस्तक की बिक्री सबसे अधिक हुई ? कृपया अपने प्रमुख आलोचक का नाम भी बतावें ।

उत्तर—मेरी बारह पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हो चुकी हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—माधवी, कादम्बनी, मानवी, ज्योतिष्मती, सागरिका, सुमना, सचिता, ग्रामिका, जगदालोक, प्रेमाञ्जलि, आधुनिक कवि और विश्वगीत ।

नवीन कृतियों म विश्व-गीत है । उसके अतिरिक्त दो पुस्तकें 'शान्ति-गीत' तथा 'मीरा' प्रायः लिखी जा चुकी हैं । आशा है ये पुस्तकें भी शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेंगी ।

प्रत्येक पुस्तक के लिखने का कुछ न कुछ उद्देश्य रहता ही है । यही बात मेरी कृतियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । मेरी पहली पुस्तक 'माधवी' जब प्रकाशित हुई तब खड़ीबोली ब्रजभाषा के स्थान में कविता की भाषा बनने का प्रयास कर रही थी । उस समय की खड़ी बोली की रचनाओं में माधुर्य की कमी लोगों को खटकती थी, अस्तु 'माधवी' की ओर स्वभावतः लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ क्योंकि ब्रजभाषा में प्रचुरता से प्रयुक्त होने वाले घनाक्षरी और सवैया छन्दों मे ही वह पुस्तक लिखी गई थी और उसकी शैली में भी ब्रजभाषा-काव्य की झलक है । डा० गंगानाथ झा ने उसकी भूमिका लिखी और रत्नाकर जी एवं भानु कवि जैसे ब्रजभाषा के महारथियों ने भी उसका स्वागत किया था ।

'कादम्बनी' पुस्तक लिखने का भी एक कारण हुआ । उन दिनों हिन्दी में अधिकतर निराशावादी रचनाएँ निकल रही थीं । डा० अमर-नाथ झा ने मुझसे एक दिन कहा कि क्या हिन्दी में रोना ही रोना रहेगा ? आशा कहीं दिखाई ही नहीं देती; उनकी इस बात के बाद ही मैंने 'कादम्बनी' लिखना आरम्भ किया । इस संग्रह की सब कविताएँ आशा-वादी दृष्टिकोण से लिखी गई हैं । इसकी आलोचना डा० झा ने की थी ।

'मानवी' पुस्तक की रचना मैंने 'इमेन्सिपेशन आफ वूमन' नामक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ने के बाद की। जैसा कि पुस्तक के आरम्भ में छपी यह पंक्ति "युग युग के अगणित क्लेशों की तू है करुण कहानी" सूचित करती है, इस ग्रन्थ में नारियों के कारुणिक जीवन का चित्रण है।

'ज्योतिष्मती' पुस्तक में मेरी आध्यात्मिक रचनाओं का संकलन है।

'सागरिका' और 'सुमना' में मेरे मुक्तक गीत हैं। मेरा गीत-काव्य इन्हीं पुस्तकों में विशेष रूप से मिलेगा।

'ग्रामिका' नाम ही इसके विषय का बोधक है। ग्राम्य जीवन तथा प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण इसमे मिलेगा।

'जगदालोक' गाँधी जी पर लिखा गया महाकाव्य है। इसमें मेरे ऊपर देश की बदलती हुई राजनीति का जो भी प्रभाव पड़ा है वह प्रतिलक्षित होता हुआ मिलेगा।

'प्रेमाञ्जलि' मे जो गीत है वे दो भागों मे बँटे हैं। स्वतन्त्रता आने के पहले के गीत पहले भाग में और स्वतन्त्रता के बाद मेरे भावों में जो स्फूर्ति आई है, वह इस पुस्तक के दूसरे भाग में है।

अबीसीनिया के परास्त होने पर मैंने 'इटली से' एक कविता लिखी थी जो 'सञ्चिता' में प्रकाशित है। उसके बाद मैने और बहुत सी रचनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय विषय पर लिखीं जो 'विश्व-गीत' तथा 'शान्ति-गीत' पुस्तकों में संगृहीत है।

'मीरा' के ऊपर जो पुस्तक लिखी गई है उसमें उनके मनोभाव प्रकट करने की चेष्टा की गई है।

आपने पूछा है कि मैं अपनी किस कृति को सबसे सुन्दर समझता हूँ। मै इसका क्या उत्तर दे सकता हूँ? हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मै 'जगदालोक' को सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ, क्योंकि काव्य एक युग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

मेरी किस पुस्तक की कितनी बिक्री हुई यह बतलाना मेरे लिए सम्भव नहीं, क्योंकि इस ओर कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। यह तो ठीक-ठीक प्रकाशक ही बतला सकता है।

मेरे कृतित्त्व के सम्बन्ध में कई प्रसिद्ध आलोचकों ने लिखने की कृपा की है। उनमें से प्रमुख ये हैं—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, डा० श्याम सुन्दर दास ('हिन्दी के निर्माता' नामक पुस्तक में चर्चा की है), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० रसाल, प० रामनरेश त्रिपाठी, श्री भगवती चरण वर्मा, श्री नरेन्द्र शर्मा और बा० रामचन्द्र टण्डन।

इनकी आलोचनाओं से मैं केवल गौरवान्वित ही नहीं, लाभान्वित भी हुआ हूं।

प्रश्न—क्या आप अवतारवाद में विश्वास करते हैं? आपने अपने काव्यों में हिन्दू-देवी-देवताओं के नाम पूर्ण श्रद्धा से लिए हैं, क्या आप उनके कायिक जीवन को किसी काल में मानते है? राम और कृष्ण अवतार थे, ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा किसी कवि-विशेष के कल्पित पात्र मात्र?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर मैं बहुत संक्षेप में दूंगा। मेरी कविता की दो पक्तियां सुन लीजिये और उन्हीं के आधार पर मेरी मान्यता को समझिये।

श्री राम तुम्हें प्रतिभा बल से, कवि बालमीक ने किया प्राप्त।
निज भक्ति भावना से देखा, तुलसी ने जग में तुम्हें व्याप्त॥

इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में इतना और कहना आवश्यक समझता हूँ कि मै अज्ञेय मीमांसा को मानता हूँ। इसके प्रवर्तक कपिल मुनि थे और अंग्रेजी साहित्य में हर्बर्ट स्पैन्सर हुए। जहां तक राम की कथा का

प्रश्न है, वाल्मीकीय रामायण तथा रामचरितमानस काव्य-ग्रंथ हैं, उनमे ऐतिहासिक तत्व को खोजने का प्रयास न करना चाहिये। मैंने राम और कृष्ण के नाम श्रद्धा से इसलिये लिए है क्योंकि उन्हे लाखों मनुष्य श्रद्धा की दृष्टि से देखते है। जो लोग अवतारवाद पर विश्वास नही करते वे भी उन्हे महान् पुरुष तो समझते ही है।

प्रश्न—हिन्दी-साहित्य को विन्ध्यप्रदेश की देन पर कुछ प्रकाश डाले।

उत्तर—विन्ध्य प्रदेश (अब मध्य प्रदेश का एक अंग) कई छोटे-बड़े राज्यों को मिलाकर बनाया गया है। बुन्देलखंड तथा बघेलखंड इसके प्रमुख दो भाग है। इन दोनों प्रदेशों ने कितने ही छोटे-बड़े कवियों को जन्म दिया है। रीवाँ के दो महाराज प्रसिद्ध कवि थे। महाराज विश्वनाथसिंह और महाराज रघुराजसिंह के कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। महाराज रघुराजसिंह का 'राम स्वयंवर' प्रसिद्ध ग्रंथ है।

प्रश्न—वृन्दावन हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत १९२७ के विराट कवि सम्मेलन में और १९३५ में ओरियन्टल कांफ़ेंस मैसूर के अन्तर्गत बहु-भाषा कवि-सम्मेलन में आप सभापति रहे हैं, साथ ही प्रयाग के द्विवेदी-मेला के स्वागताध्यक्ष रहे हैं, कृपया इन अवसरों के कुछ संस्मरण सुनायें।

उत्तर—वृन्दावन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रेम महाविद्यालय के छात्रों द्वारा वाणविद्या-कौशल का जो प्रदर्शन हुआ वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। श्री मद्भागवत का पाठ भी बहुत ही मनोरंजक था। कवि सम्मेलन में भी एक ऐसी घटना हुई जिसका स्मरण अब तक बना है। जब वहाँ कविता पाठ हो रहा था तब एक सज्जन ने अपनी एक शृंगारिक रचना सुनाई। सभा में बहुत सी महिलाएँ बैठी थीं। एक व्यक्ति ने जोर से कहा कि कविता अश्लील है, औरतों के

बीच में ऐसी कविता नहीं पढ़नी चाहिये। कुछ अन्य लोग भी भड़क उठे। महिलाओं ने यह सोचा कि उन्हें अब चल देना चाहिए। फलतः वे लोग उठकर चली गई। उसके बाद आगे का कार्यक्रम चलता रहा। दूसरे दिन कुछ संभ्रान्त कवियों की उपस्थिति में वह कविता फिर पढ़ी गई, और उसमें कोई भी अश्लीलता नहीं पाई गई, तथापि कुछ पत्रों ने उस घटना के प्रतिकूल आलोचना कर ही डाली।

ओरियन्टल कांफ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए जब मैं १९३५ में मैसूर गया तब मुझे काफी लम्बी यात्रा करनी पड़ी। मद्रास पहुँचने में ही दो दिन लग गए। मार्ग में चावल, दाल और कुछ तरकारियों के सिवा और कुछ खाद्य पदार्थ नहीं मिलता था। मद्रास में एक मित्र के यहाँ पूड़ी खाने को मिली।

मैसूर पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि सभापतियों के अलग ठहरने का प्रबन्ध किया गया था, परन्तु मेरे साथ मेरे मित्र पं० ब्रजमोहन व्यास भी थे, इसलिए जहाँ और सब प्रतिनिधि ठहरे थे वही मै भी ठहर गया। वहाँ भी सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थी। मैसूर के आस-पास के प्राकृतिक दृश्य और दक्षिण भारत का नृत्य, जो विशेपकर आगन्तुओं को दिखाए गए, वे बड़े ही आकर्षक थे।

ओरियण्टल कांफ्रेस की सब कार्यवाही अंग्रेजी मे हुई। कवि सम्मेलन में अधिकांश कविताएँ तामिल, तेलगु आदि दक्षिण भारत की भाषाओं में पढ़ी गई, परन्तु कुछ कविताएँ अंग्रेजी संस्कृत और उर्दू में भी सुनाई गई। मैंने हिन्दी में कविता पढी, किन्तु भाषण मैंने अग्रेजी ही में दिया क्योंकि हिन्दी मे बोलना फ्रांस और इंगलेंड जैसे दूर-दूर देशों से आए हुए प्रतिनिधियों के साथ अन्याय करना होता। डा० गंगानाथ झा ने प्रयाग ही में मुझे यह सुझाव दे दिया था। सचमुच वहाँ का एक अनोखा वातावरण था।

मैसूर से लौटते समय में रामेश्वरम् गया और मदुरा में मीनाक्षी देवी का विशाल मन्दिर देखा जो वास्तव में अद्वितीय है। मन्दिर की सीमा के भीतर एक नगर ही वहाँ बसा हुआ दिखाई पड़ा। दक्षिण भारत में हिन्दू-संस्कृति की विशेष निधियाँ सुरक्षित हैं।

द्विवेदी जी (महावीर प्रसाद) को अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने के लिए हिन्दी-साहित्यिकों का एक बड़ा समारोह कुछ ही दिन पूर्व काशी में हो चुका था, तथापि द्विवेदी-मेला में भी हिन्दी के कितने ही विद्वान एवं गण्यमान्य सज्जन उपस्थित थे। महामना मालवीय जी ने उसका उद्घाटन किया था और डा० गंगानाथ झा ने उसकी अध्यक्षता की थी। डा० झा ने तो द्विवेदी जी को अपना गुरु कह कर और उनके चरण स्पर्श कर के अपनी असीम विनम्रता दिखलाई। द्विवेदी मेले की सफलता का श्रेय श्री केदारनाथ गुप्त, पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, पं० ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' और ठा० श्रीनाथसिंह आदि अनेक सज्जनों को था, जिनके सहयोग के विना वह कार्य सम्पन्न नही हो सकता था।

प्रश्न—हिन्दी-साहित्य के इतिहास में किस काल की रचनाएँ आपको अधिक प्रिय ह ? आधुनिक कवियों और अन्य साहित्यकारों में आपका प्रियपात्र कौन है ? प्रयोगवादी कवियों पर आपकी आस्था कहाँ तक है ? अज्ञेय, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, बालकृष्णराव और नागार्जुन के प्रयोग क्या हिन्दी-काव्य को कोई नयी देन-देने की सामर्थ्य रखते हैं ?

उत्तर—हिन्दी-साहित्य में भक्तिकाल की रचनाएँ मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। अष्टछाप के अन्तर्गत आने वाले सभी कवियों ने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है। आधुनिक कवियों में हरिऔध जी, गुप्त जी, प्रसाद जी, निराला जी, पंत जी, महादेवी जी तो मुझे विशेष प्रिय हैं, इनके अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा, दिनकर, बच्चन, रामनरेश त्रिपाठी, भगवती चरण वर्मा और गुरुभक्त सिंह जी की रचनाएँ भी मुझे बहुत पसन्द हैं।

प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और प्रतीकवाद की रचनाओं का मै हार्दिक स्वागत करता हूँ। हिन्दी-साहित्य में सब प्रकार की रचनाओं का समावश होना चाहिए, तभी उसकी श्रीवृद्धि हो सकती है। यदि कविता में कवित्व है तो वह किसी भी रूप मे ग्राह्य होगी। अज्ञेय, धर्मवीर भारतो, जगदीश गुप्त, बालकृष्ण राव और नागार्जुन श्रेष्ठ कलाकार है और इनसे हिन्दी को बहुत कुछ आशा है।

प्रश्न--'मानवी' पुस्तक पढ़ने से पता चलता है कि आपने महिला-जीवन और नारी-मनोविज्ञान पर अच्छा चिन्तन किया है। कृपया बतावें, पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन के दृष्टिकोण से महिलाओं का कार्य-क्षेत्र क्या होना चाहिए ?

उत्तर--'मानवी' की चर्चा तो अभी हो ही चुकी है। उस का परिचय निम्नलिखित पंक्ति से ही मिल जाता है--'युग-युग के अगणित क्लेशो की तू है अमर कहानी'। वास्तव में महिलाओं ने प्रारम्भ से ही त्याग और संयम के अगणित आदर्श उपस्थित किये है, क्या सीता और क्या शकुन्तला। आज की भारतीय नारी भी कुछ भिन्न नहीं है। मेरे विचार से स्त्रियों को परिवार ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाना चाहिए क्योंकि सामाजिक जीवन का यह एक आवश्यक अंग है; फिर भी मै इस पक्ष में भी हूं कि महिलाओं को अपना मार्ग चुनने के लिए पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्हे सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। हमारी राष्ट्रीय शक्ति की वे आधी शक्ति है। हम उन्हे पंगु बना कर कभी भी उन्नति नहीं कर सकते। उन को पंगु बना कर अपने ऊपर अनावश्यक भार ओढ़ना भी उचित नही। जो महिलाएँ आगे आने का सामर्थ्य रखती हैं और हमारे घर के कार्यो के अतिरिक्त अन्य कार्यों को सम्हाल सकती है उन्हें वैसा करने का पूण अवसर मिलना चाहिए। वस्तुतः यह तो महिलाओं के लिए स्वयं सोचने का विषय है कि वे कहाँ पर रह कर अपने परिवार या देश को अधिक अच्छे रूप से सेवा कर सकती है। प्रत्येक घर की अलग-अलग स्थिति

होती है। महिला स्वयं ही अपना स्थान चन सके तो अधिक अच्छा हो। हमारा मामाजिक जीवन नष्ट न होना चाहिए और यदि परिवार की ऐसी आवश्यकता है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही नौकरी करें तो कोई हर्ज नही, इस में कुछ भी बुराई नहीं। समाज और परिवार के प्रति सोचने का दायित्व नारी पर भी तो है, केवल पुरुष को ही ठीका लेने की क्या आवश्यकता है ? महिलाओं का कार्य-क्षेत्र आज की स्थिति में बाँधा नही जा मकता, यह उन के स्वय निर्णय करने का विषय है।

प्रश्न--क्या उपन्यास व नाटकों मे आप की रुचि रही है ? यदि हाँ तो आधुनिक नाटककारों व उपन्यासकारों में किस को आप अधिक पसन्द करते हैं ?

उत्तर--उपन्यास मेंने बहुत नही पढ़े, परन्तु जो कुछ पढ़ा है उसके आधार पर कह सकता हूँ कि हिन्दी में कितने ही उच्चकोटि के उपन्यास लिखे जा चुके है। प्रेमचन्द जी का गोदान, गबन और कर्मभूमि, वृन्दावन लाल वर्मा का मृगनयनी और झांसी की रानी तथा भगवती चरण वर्मा का चित्रलेखा और तीन वर्ष, अज्ञेय जी का शेखर—एक जीवनी, चतुरसेन शास्त्री का वैशाली की नगरवधू तथा यशपाल का दिव्या आदि उपन्यास किसी भी भाषा के उच्चकोटि के उपन्यासों से टक्कर ले सकते हैं।

नाटकों में जयशंकर प्रसाद और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक पढ़े हैं और वे बहुत सुन्दर लगे। इन के बाद डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक भी मुझे बहुत पसन्द आए। ।इस क्षेत्र में सेठ गोविन्ददास ने भी हिन्दी की प्रशंसनीय सेवा की है।

प्रश्न--अपने जीवन की कोई अविस्मरणीय घटना सुनाइये।

उत्तर--इस प्रश्न के उत्तर में मैं निराला जी से प्रथम भेंट की चर्चा करूँगा। मै कलकत्ता गया हुआ था। वहाँ के मतवाला मण्डल के आमन्त्रण से जब मैं वहाँ पहुँचा तो निराला।जी से भेंट हुई। मतवाला के संचालक

सेठ महादेव भाई भी मिले थे। निराला जी ने जिस सहृदयता से मेरा स्वागत एवं आतिथ्य किया वह भुलाया नही जा सकता। उन्होंने अपनी कई सुन्दर रचनाएँ भी मुझे सुनाई। उनके व्यक्तित्व से ही उनके कृतित्व का अनुमान किया जा सकता था। संस्कृत की यह उक्ति उन पर चरितार्थ होती थी—"नहि कस्तूरिका मोदः शपथेन विभाव्यते।"

देश काल के अनुसार कर्त्तव्य-मार्ग का निर्देश करना ही साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य को कर्त्तव्य-स्फूर्ति देनी चाहिए। कर्त्तव्य का मानदंड निर्धारित करते समय अपनी संस्कृति का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। प्रभुसम्मत उपदेश सर्वसाधारण के लिए अनुपयुक्त होता है। अतः साहित्य सुहृत्सम्मत उपदेश देता है। साहित्य क्रोध, करुणा, शृङ्गार, हास्य आदि स्थायी भावों को जगाकर चित्त को रसोद्रिक्त कर देता है। चेतोद्रवण की यह स्थिति संस्कारों को सहज ही ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार रसचिंतन को एकतान और एकाग्र करते हैं। विज्ञान यदि राष्ट्र का मस्तिष्क है तो साहित्य हृदय। साहित्य के बिना कोई राष्ट्र जी नहीं सकता। चित्त को रसाविष्ट एवं वशीकृत करते हुए औचित्य की प्रतिष्ठा ही साहित्य का एकमात्र मानदंड है। रसावस्था विच्छित्ति और चमत्कार को नष्ट करने का एक मात्र कारण अनौचित्य है। इसलिए कहा गया है कि अलंकार वहीं तक अलंकार है जहाँ तक वे रस के उपकारक हैं। अतः साहित्य-प्रेरणा को अनौचित्य की सीमा का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

—महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

कविशिरोमणि श्री सियारामशरण गुप्त

कविशिरोमणि श्री सियारामशरण गुप्त

परिचय

आपका जन्म चिरगाँव, (झाँसी) भाद्र पूर्णिमा वि० संवत् १९५२ सन् १८९५ में हुआ। आप राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज हैं। अग्रज की भाँति आपने भी घर ही में शिक्षा पाई। मराठी, बंगला, गुजराती, अँग्रेजी और संस्कृत के जानकार हैं। पहली रचना सन् १९१० में काशी के 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। डा० नगेन्द्र ने आपके साहित्य एवं व्यक्तित्व पर 'सियारामशरण गुप्त' नामक पुस्तक का सम्पादन कर आपका अभिनन्दन किया। 'हंस' के रेखाचित्रांक में आपको विशेष सम्मान मिल चुका है। कानपुर के दैनिक पत्र 'प्रताप' ने 'सियारामशरण गुप्त' अंक प्रकाशित कर आपको गौरव प्रदान किया। आप अनेकानेक आलोचकों द्वारा सिद्ध कवि और कुशल उपन्यासकार माने जा चुके हैं। श्री कन्हैयालाल सहल ने अपनी पुस्तक 'आलोचनांजलि' में आपकी विशिष्ट आलोचना की है।

आपकी मुख्य-मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं--मौर्य विजय [१९१४] अनाथ, आर्द्रा, विषाद, दूर्वादल, गोद (उपन्यास), मानुषी (कहानियाँ, पुण्यपर्व (नाटक), पाथेय, अन्तिम आकांक्षा (उपन्यास), मृण्मयी, बापू, नारी (उपन्यास), झूठ सच (निबन्ध), उन्मुक्त, नकुल, नोआखाली में, जयहिन्द, गीता संवाद, आत्मोत्सर्ग, निष्क्रिय, प्रतिशोध, कृष्णाकुमारी आदि-आदि। आपका पता है चिरगाँव, झाँसी।

भेंट

प्रश्न—भारतीय संस्कृति की दृष्टि से प्रगतिशील साहित्य हिन्दी के लिए कैसा सिद्ध हो रहा है ?

उत्तर—अभी तक प्रगतिशील साहित्य के नाम से जो भी चीजें प्रकाश में आई हैं, उनमें स्थायित्व नहीं है। जहाँ तक उसके प्रभाव का प्रश्न है प्रगतिशील साहित्य ने उसे बदल दिया हो, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न—प्रगतिशील लेखक संघ के विषय में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—वास्तव में इस नाम से किसी संघ के होने की आवश्यकता थी ही नहीं, अच्छे लेखक प्रगतिशील होते ही हैं। जो एक नया संघ बन गया है, इसका रूप बहुत कुछ राजनीतिक है।

प्रश्न—कुछ लोग यह कहते हैं कि साहित्य की रचना जनता की भाषा में होनी चाहिए। आपकी राय में साहित्य-सृजन किस रूप में हो ?

उत्तर—पहले तो प्रश्न उठता है कि जनता की भाषा है क्या ? उसका वास्तविक रूप क्या है ? जो यथार्थ में जनता की भाषा है उसके तो इतने रूप हैं कि उसको अनगिनत श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। मेरे गाँव की भाषा ही लीजिए और फिर इससे २० मील पूर्व की भाषा अथवा २० मील पश्चिम की भाषा लीजिए। इतने से क्षेत्र में ही आपको तीन प्रकार की भाषाएँ मिल जाएँगी। इस प्रकार से जनता की भाषा, जो वास्तव में जनता की भाषा है वह, तो प्रत्येक ४०

अथवा ५० मील पर बदल जाती है। इस कारण जनता की भाषा में साहित्य की रचना तो साहित्य की छीछालेदर है। हाँ, यह बात दूसरी है कि जनता की भाषा के नाम पर यदि कोई हिन्दी का विकृत रूप ही लाने के लिए प्रयास कर रहा है तो उसके लिए हमें सतर्क रहना चाहिए। साहित्य और अच्छे साहित्य के सृजन के लिए सुगठित, ठोस और परिमार्जित भाषा का होना आवश्यक है। मेरे विचार से तो जिस भाषा का प्रयोग हम लोगों ने किया है, वह जनता के लिए ठीक है। जनता के निकट आने के लिए यह किया जा सकता है कि भाषा की क्लिष्टता को अधिक न बढ़ाया जाए।

प्रश्न—हम लोग अभी तक कुछ ऐसे वातावरण में रहे हैं कि हमारे बीच बहुत से विदेशी शब्द इस बहुतायत से प्रयुक्त होते रहे हैं कि हमें उनका हिन्दी-रूप कठिनाई से मिलता है अथवा मिलता ही नहीं। क्या यह आवश्यक है कि उनका हिन्दी में अवश्य ही कोई पर्याय बनाया जाए और उन प्रचलित शब्दों का बहिष्कार किया जाए ?

उत्तर—नहीं, ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिन विदेशी शब्दों को हिन्दी अपने में खपा सकी है, उसे ठीक वैसा ही बिना सकोच प्रयोग करना चाहिए। अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्द यदि रहे तो कोई हानि नहीं। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि हिन्दी जब राष्ट्रभाषा हो गई है तब फिर उसमें यदि प्रादेशिक भाषाओं के शब्द भी आवश्यकतानुसार ले लिए जाएँ तो कोई आपत्ति नहीं।

प्रश्न—सत्साहित्य तथा हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के प्रति जनता में अभिरुचि किस प्रकार पैदा की जा सकती है ? इस सम्बंध में हिन्दी-पत्रकार क्या करें और प्रादेशिक सरकारें कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकती है ?

उत्तर—सत्साहित्य के प्रति हर देश की जनता उदासीन रही है और इसलिए हिन्दी की साहित्यिक-पत्रिकाओं को यदि कठिनाई अनुभव करनी

पड़ रही है, तो कोई असाधारण बात नहीं है। हाँ, इतना हो सकता है कि जनता में इसका विस्तार बढ़ाने के लिए कई-एक सस्थाएँ मिलकर प्रचार करें, जैसे भारतीय चाय कम्पनियों ने चाय का प्रचार किया था। और हिन्दी के आप पत्रकार लोग आपस में बैठकर इस विषय में यदि कोई नई सूझ निकालें तो अधिक उत्तम होगा। सहकारिता के आधार पर आप लोगों को बहुत-कुछ सफलता मिल सकती है। प्रादेशिक सरकारें यों तो मेरे विचार से हिन्दी के लिए बहुत-कुछ कर रही है, किन्तु वे यदि अपनी सारी विज्ञप्तियाँ, अंग्रेजी के पत्रों को प्रधानता न देकर, हिन्दी के पत्र तथा पत्रिकाओं मे दें तो अप्रत्यक्ष रूप से वे हिन्दी के पत्रकारों की बहुत-कुछ आर्थिक सहायता कर सकती हैं।

प्रश्न—हिन्दी-भाषा भारत के सबसे विस्तृत क्षेत्र उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा दिल्ली आदि में अच्छी प्रकार से प्रचलित है, फिर भी बंगला, तामिल और अंग्रेजी भाषाओं की पत्रिकाओं तथा पत्रों से हिन्दी-पत्रपत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या कम रहती है, इसका क्या कारण आप समझते हैं ?

उत्तर—आजकल हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं की संख्या बहुत काफी हो गई है और इस कारण अधिकतर वे अपने-अपने क्षेत्र में ही अपना स्थान बना पाती हैं। दूसरा कारण यह है कि पत्र के व्यवस्थापकों की व्यवस्था तथा आर्थिक स्थिति उतनी सुदृढ़ नही है। हिन्दी-जनता में पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति भी कुछ कम है जिसके लिए प्रचार की आवश्यकता है।

प्रश्न—कृपया डा० रामकुमार वर्मा, डा० रामरतन भटनागर, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० रामविलास शर्मा, श्री गुलाबराय, डा० नगेन्द्र आदि आलोचकों को क्रमबद्ध उनकी श्रेणी में रखिए।

उत्तर—इन विद्वानों को श्रेणीवद्ध करना उचित नहीं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का भी उल्लेखनीय स्थान है। उनका नाम छोड़ना उचित नही। उनकी अपनी शैली है।

प्रश्न--एक लेखक की स्थिति से आपके विचार से किसी भी लेखक की किसी पुस्तक की आलोचना करते समय आलोचक को किन-किन बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

उत्तर—मेरे विचार से आलोचना के बजाय समालोचना करना अधिक हितकर है। समालोचना में अच्छाई और बुराई दोनों की परख हो जाती है। समालोचक को किसी भी पुस्तक की समालोचना करते समय पुस्तक के लेखक के व्यक्तित्व को भुलाकर ही समालोचना करनी चाहिए और तभी रचना को वास्तविक कसौटी पर कसा जा सकता है। आजकल यह कार्य बड़ा कठिन हो गया है और लोग किसी की रचना-विशेष पर प्रकाश डालते समय उस रचना के रचयिता के व्यक्तित्व को अवश्य अपने साथ में रखते हैं। कुछ हद तक यह स्वाभाविक भी है, किन्तु असली समालोचना तभी हो सकती है जब कुछ देर के लिए यह भुला दिया जाए कि यह किसने लिखी है और उसका हिन्दी-साहित्य मे अब तक कुछ स्थान है अथवा नही।

प्रश्न--कवि निराला की 'अर्चना' आपने देखी होगी, उसके प्रति आपके क्या विचार हैं ?

निरालाजी की स्फुट कविताएँ, जो आजकल (१९५३-५४) बराबर पत्र-पत्रिकाओं मे छप रही हैं, देखता हूँ, वे मेरे लिये कुछ दुखद है। आगे कुछ कहना आवश्यक नही समझता।

आलिगन तो दूर की बात रही, चुम्बन शब्द को भी अपनी पुस्तक में नितान्त बाध्य होने पर भी मैं नहीं दे सकता। उससे कन्नी काट जाता हूँ। नर-नारी में यह है, जानता हूँ। चलता है, जानता हूँ। दोष की बात है, यह नहीं कहता, फिर भी न जाने क्यों मुझसे लिखा नहीं जाता। हमारे समाज में इस वस्तु को लोग गोपन रखना चाहते हैं। शायद इसीलिये लंबे सस्कार के कारण योरोपियन साहित्य की तरह इसके जाहिरा डिमान्सट्रेशन से शर्माता हूँ। बहुत सम्भव है मेरी दुर्बलता हो। लेकिन सोचता हूँ, इस दुर्बलता को लेकर ही तो मैंने अनेक प्रणय-चित्र लिपिबद्ध किये हैं, मुश्किल में तो नहीं पड़ा।

—शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

उपन्यास सम्राट् श्री वृन्दावनलाल वर्मा
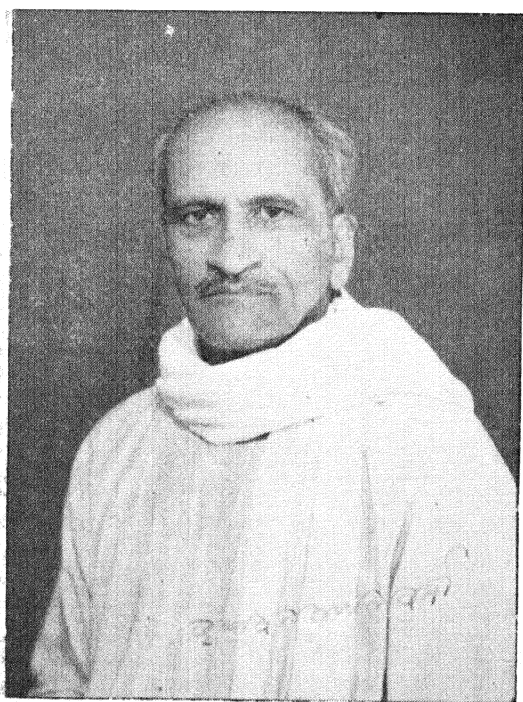
उपन्यास सम्राट् श्री वृन्दावनलाल वर्मा

परिचय

आपका जन्म मऊरानीपुर, जिला झाँसी मे सन् १८९० ई० में हुआ। आपके पितामह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के राज्य के दीवान थे। आपके चाचा साहित्य में अच्छी रुचि रखते थे। आपके चाचा जी ने एक नाटक 'राम वनवास' लिखा था जो उनकी प्लेग से अचानक मृत्यु होने के कारण अधूरा रह गया। आपने जब उस नाटक को देखा तो एक नाटक आपने भी लिखा। नाटक का नाम था 'नारान्तक वध' जो घर की धोतियाँ और चादर बाँध कर खेला भी गया। आपकी प्राथमिक शिक्षा ललितपुर में हुई, फिर आप झाँसी आकर पढ़ने लगे। यहाँ आपका साथ मैथिली-शरण गुप्त (राष्ट्रकवि) से हुआ। आपकी शिक्षा बी० ए० एल० एल० बी० तक हुई। आपको पढ़ने-लिखने से जितनी रुचि रही उतनी ही कसरत से भी रही। ५०० डंड और ५०० बैठकें लगाना आपका नित्य का नियम रहा है। आपका पाश्चात्य साहित्य और भारतीय इतिहास का विशद अध्ययन है। आप भ्रमणशील और शिकारी भी हैं। आपका अब तक का प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, कचनार, प्रेम की भेंट, सोना, अचल मेरा कोई, अहिल्याबाई, दोषी, लगन, मुसाहिबजू, अमरबेल, टटे काँटे, हँस-मयूर, पूर्व की ओर, बीरबल, जहाँदारशाह, फूलों की बोली, ललितविक्रम, राखी की लाज, खिलौने की खोज, बाँस की फाँस, नीलकंठ, सगुन, पीले हाथ, मंगलसूत्र, निस्तार, शरणागत, कलाकार का दंड काश्मीर का काँटा, लो भाई पंचो लो,

कनेर, मंगल मोहन, कब तक, पायल, हरसिंगार, दबे पाँव आदि। 'मृग-नयनी' उपन्यास पर नागरी प्रचारणी सभा, काशी ने सुधाकर द्विवेदी स्वर्णपदक दिया, साहित्यकार संसद ने १०००) रु०, उत्तर प्रदेश सरकार ने १०००) रु०, मध्यभारत सरकार ने १०००) और श्री हरजीमल डालमियाँ समिति ने २१००) रु० का पुरस्कार दिया। आप हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में अपना सानी नहीं रखते। आप आजकल झाँसी में सदर बाजार मे रह रहे हैं।

भेंट

प्रश्न—कृपया अपने प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालते हुये बतावें कि आप में उपन्यास लिखने की प्रेरणा सर्व प्रथम कब और कैसे आई। उपन्यास लिखने में आपका सिद्धांत क्या रहा है ?

उत्तर—मेरा अपने घर का वातावरण ही ऐसा था कि मुझमें साहित्य के प्रति अभिरुचि बचपन से ही जागी। मेरे माता और पिता दोनो ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे, अतः घर में रामायण और महाभारत की कथा को सुनकर मेरा आत्माभिमान निरन्तर बढ़ता गया। मै अपने को बड़े ही महान् पराक्रमी व्यक्तियों की संतान समझने लगा था। आगे चल कर जब मै कुछ बड़ा हुआ तो अंग्रेजों द्वारा लिखित जो इतिहास मुझे अपनी पाठ्य पुस्तकों में पढ़ने को मिले, उनमें लिखा था—भारत एक गर्म देश है। यहाँ के लोग स्वाभाविक रूप से सुस्त होते हैं और वे अधिक मेहनत नहीं कर सकते। यहाँ के लोगों की आयु भी अधिक नहीं होती। यहाँ शुरू से ही छोटे-छोटे राज्य रहे हैं जिनमें आपस में बराबर युद्ध होता रहा और जिसके कारण यहाँ अन्य जाति के लोगों ने बहुत लूट-खसोट की। यहाँ जितने भी लोगों ने आक्रमण किये सभी कुछ न कुछ यहाँ से ले गये, किन्तु अंग्रेजों का जब से राज्य हुआ यहाँ पूर्ण व्यवस्था कायम हुई और अंग्रेजों ने शान्ति व रक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध किया। अब यहाँ कोई भी बाहर से आक्रमण करने की हिम्मत नहीं कर सकता और भारतीय अब पूर्णतया सुरक्षित एवं शान्त हैं। इतिहास के इन शब्दों से मुझे मेरे संस्कारों ने सहमत नहीं होने दिया और मैं सोचने लगा कि बात कुछ दूसरी अवश्य है। मैंने अपने विचारों के पुष्टीकरण के लिये अन्य कई इतिहास ढूँढ-

ढूँढ़ कर पढ़े, जिनमें कुछ ऐसे भी मिले जिनमें हिन्दुस्तान और हिन्दू-राजाओं का वर्णन बिल्कुल दूसरी ही तरह का अन्य अंग्रेजों ने किया था। मेरे लिये यह एक घटना थी और इसी घटना ने मेरी अभिरुचि इतिहास की ओर बढ़ा दी। मैं इतिहास में तथ्य खोजने का प्रेमी हो गया। ज्यों-ज्यों मुझे अपना इतिहास अधिक शुद्ध रूप में मिलता गया, मुझमें इसके प्रचार एवं प्रसार करने की भावना भी जागृत होती गई। 'Max Muller's India; What Can it teach us' नामक ग्रन्थ पढ़ने लायक है।

मेरे साहित्यिक मित्रों में लड़कपन के साथी श्री बोधराज सहानी और श्री प्यारेमोहन मिश्र हैं। लिखने की प्रेरणा इन्हीं लोगों से मिलती थी। श्री प्यारेमोहन मिश्र का अपना अच्छा-सा पुस्तकालय था जिसमें अंग्रेजी के चुने हुये उपन्यास संकलित थे। सर वाल्टर स्काट के लगभग सभी उपन्यास वहाँ मुझे उपलब्ध हुये और मैंने अपनी १८ वर्ष की आयु में अर्थात् सन् १६०८ में उन्हें खूब पढ़ा। इन्ही दिनों मेरी सबसे पहली पुस्तक 'महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित्र' प्रकाशित हुई। मेरे लड़कपन के साथियों में मैथिली-शरण गुप्त का विशेष स्थान है। हमलोग लंगोटिया यार थे और हैं। हम एक ही स्कूल में पढ़ते थे। आज भी जब हम दोनों बैठते हैं तो हमारी बातों में बुढ़ापे से अधिक लड़कपन टपकता है। काव्य के क्षेत्र में गुप्त जी ठीक उसी प्रकार से अग्रसर हो रहे थे जैसा मैं अपने पथ पर।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में मेरा मुख्य ध्येय रहा है अपने देश के इतिहास के गौरव को, शोध और खोज के तथ्यपूर्ण आधार पर, रोचक रूप से प्रस्तुत करना। मैं अपने उपन्यासों में यदि एक मील का वर्णन करना चाहता हूँ तो उस क्षेत्र का १२ मील अवश्य भ्रमण कर लेता हूँ और इसी प्रकार मैं एक तथ्य के पुष्टीकरण के लिये १२ तथ्यों का जानना आवश्यक समझता हूँ। किसी भी उपन्यास के लिखने के पहले मै तत्सम्बन्धी इतिहास को पढ़ कर पहले टिप्पणियाँ तैयार करता हूँ और

फिर क्षेत्रविशेष में भ्रमण करके वहाँ की प्रचलित दन्तकथाओं को एकत्र करता हूँ या वहाँ के मूल निवासियों से सुनता हूँ। यही मेरा सिद्धान्त है।

प्रश्न—ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों को चुनने में क्या आप इस निष्ठा को मानते हैं कि सभी नाम वे ही आवें जो अपने वास्तविक जीवन में उस समय विद्यमान थे ?

उत्तर– निश्चय ही मैं इस निष्ठा को मानता हूँ। मैं अपने उपन्यासो में प्रमुख पात्रों के साथ ही सहायक पात्रों का नाम भी यथासंभव वही रखने का प्रयास करता हूँ जिनका अस्तित्व उन दिनो था। फिर भी कथा को स्वाभाविक रूप से बढ़ाने के लिये कुछ-एक काल्पनिक पात्रो का निर्माण करना ही पड़ता है। इनके नाम दूत, परिचायक, दासी, सैनिक आदि जैसे साधारण पात्रों के ही होते हैं। प्रमुख पात्रों या सेनानायकों के सही नाम जानने के लिये प्रायः महीनों तक खोज करनी पड़ती है।

प्रश्न—आपने अपने सामाजिक उपन्यासों म जिन पात्रों का चित्रण किया है वे वास्तविक जीवन के उद्धरण हैं अथवा केवल आपकी कल्पना के प्रतिरूप ? समाज के किस रूप को दर्शाने की मुख्य प्रेरणा आपमें रही है ?

उत्तर—सामाजिक उपन्यासों में मेरे सभी पात्र वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करते है। मैंने अपनी आँखों से जैसे-जैसे लोगों को देखा है उनका वैसा ही चित्रण किया है, केवल नाम बदल दिये हैं। प्रायः ऐसा भी हुआ है कि जिनको मैंने अपने उपन्यास का पात्र बनाया है उन्होंने भी मेरा उपन्यास पढ़ा और मुझे अपनी भावना प्रगट करते हुये पत्र लिखा है। मेरे उपन्यास 'अचल मेरा कोई' में बन्दूक मार कर मरने की जो घटना अन्त में घटी है उस पर कुछ पाठकों ने असंतोष प्रगट किया है, किन्तु मै क्या करूँ, उस पात्र का अन्त ही इसी प्रकार से हुआ था। यह घटना और सम्पूर्ण कथानक कानपुर के एक परिवार पर

आधारित होकर कलेवरित हुई है। समाज के कुरूप से भी सुरूपता को खींचना और यथार्थ के कुत्सित भावों को आदर्श की ओर मोड़ना या उनको इशारा देना ही मेरी मुख्य प्रेरणा रही है। कथाकार को चतुर फोटोग्राफर की तरह काम करना पड़ता है। जिस प्रकार एक ही दृश्य को किसी विशेष कोण से खींच कर उसके सौन्दर्य का मूल्यांकन करा दिया जाता है, उसी प्रकार से किसी कथानक या व्यक्ति को किसी विशेष दृष्टिकोण के सामंजस्य से उसको महत्त्वपूर्ण बनाया जा सकता है। वस्तुतः कहानीकार का चित्रण तो कैमरामैन के चित्रों से भी विलक्षण होता है।

प्रश्न—एक उपन्यासकार प्रायः सामाजिक ग्रन्थियों को अधिक समझने वाला माना जाता है। आज नारी और पुरुष में जो संघर्ष और होड़ दिखाई देती है उसका वास्तविक हल क्या है? हमारा नारी-समाज आजकल स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रायः उठाया करता है, कृपया बतावें कि आप उनके मार्ग में कैसे-कैसे बन्धन देखते हैं?

उत्तर—आज के प्रत्येक क्षेत्र में जो संघर्ष है वह मुख्यतया आर्थिक है और यही बात नारी के साथ भी है। हमारी सामाजिक परम्परानुसार आर्थिक दृष्टि से नारी सदा से पुरुषों पर आश्रित रही है, किन्तु वर्तमान काल में मध्यम वर्ग की जो दुर्दशा है और पुरुष की कमाई का जो हाल है वह इस आंदोलन की जड़ है। परिवार का भरण-पोषण साधारणतया एक व्यक्ति की कमाई से नहीं हो पाता और जिसके कारण गृहणी को असंतोष होता है जो आगे चल कर संघर्ष और आन्दोलन का रूप धारण कर लेता है। हमारा नवयुवती-समाज जो शिक्षित और सजग है वह पहले से ही आने वाले संकट को जानता है, फलतः स्वतन्त्रता का नारा बुलंद करता है। मूल रूप से यह कोई स्थायी आन्दोलन नहीं है। नारी-समाज हमारा ही अंग है और हमारी सामर्थ्य ही इस संघर्ष को समाप्त कर सकती है। स्त्री जब अपनी आर्थिक स्थिति ढुलमुल देखती है तभी

नौकरी करने को सोचती है। स्त्री के नौकरी करने पर पुरुष का पारिवारिक सुख और अनुशासन संकटग्रस्त हो जाता है और यहीं से संघर्ष को जन्म मिलता है । वैसे नारी-जीवन के मार्ग में मैं कोई भी बंधन नहीं देखता। शिक्षित वर्ग उनका सहयोगी ही है। अशिक्षित, अशिक्षित ही हैं उनके लिये क्या कहा जाय। देश में तो क्रांति आ रही है, आने वाले दिनों में सभी के लिए मार्ग प्रशस्त बन जायगा । हमें आर्थिक संकटों से मुक्ति पाने के लिए एक विशेष योजना बना कर आगे बढ़ना पड़ेगा ।

प्रश्न—आधुनिक हिन्दी-जगत् के प्रमुख साहित्यकारों में काव्य, नाटक, उपन्यासकार और विचारात्मक व आलोचनात्मक निबंध-निर्माताओं के नाम बताते हुये उन्हें क्रमबद्ध कीजिये ।

उत्तर—यह प्रश्न बहुत टेढ़ा है। नाम बताना तो सरल है, किन्तु क्रमबद्ध करना अपने ऊपर आफत ही मोल लेना है। जीवित उत्कृष्ट साहित्यकारों में लगभग सभी अपने अच्छे परिचितों में हैं और उनको क्रम मे बाँधना उनकी सहृदयता को अपनी ओर से कम करना हो जाता है, फिर भी मैं समझता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत को व्यक्त करने का अधिकार होना ही चाहिये, इसलिये मैं क्रमानुसार नाम लेता हूँ—कवियों मे—मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पंत, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण राव, नीरज और भुशुण्ड जी।

नाटककारों मे—रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, परिपूर्णानन्द वर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत और उपेन्द्र नाथ 'अश्क' ।

उपन्यासकारों मे—भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर, प्रतापनरायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी और 'अज्ञेय' ।

आलोचकों एवं निबन्धकारों में--डा० रामबिलास शर्मा, शिव पूजन सहाय, नन्ददुलारे बाजपेयी, डा० भागीरथी मिश्र, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० दीनदयाल गुप्त, गुलाब राय, डा० नगेन्द्र व डा० सत्येन्द्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, अयोध्यानाथ शर्मा, कन्हैयालाल सहल व बल्देव प्रसाद मिश्र।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से साहित्यकारों के प्रति मेरी सद्भावनाएँ हैं और जिनका नाम बताना उतना कठिन नहीं है जितना उनका क्रम बाँधना। मैंने जिसको जिस क्रम में रखा है यह आवश्यक नहीं है कि वे उसी स्थान के योग्य हैं, वे अपना और भी अच्छा स्थान रख सकते हैं, किन्तु यह क्रम केवलमात्र अपने विचारानुसार है।

प्रश्न--संसार प्रारम्भ से ही सुख और शान्ति के लिए संघर्षशील रहा है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े चिन्तनशील और दार्शनिकों ने अनेकानेक मार्गों व सिद्धान्तों का अनुशीलन किया है। गाँधीवाद के अतिरिक्त आप किस मार्ग को मान्यता देना चाहते हैं ?

उत्तर--वस्तुतः गाँधीवाद अलग से कोई वस्तु नहीं है। गीता में व्यक्त की हुई नीति को गाँधी जी ने अपने विचारों के समन्वय से जिस रूप मे प्रस्तुत किया, वही गाँधीवाद हो गया। इस गाँधीवाद को चरम पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाले अमेरिका के (Aldous Huxlay) श्रीअल्डॉस हक्सले हैं। मै गांधीवाद से अलग होकर गीता को ही इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपना पथ-प्रदर्शक मानता हूँ। गीता में श्लोक है--

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥*

---

*अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण बोले, जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश की (अन्तःकरण और, इन्द्रियादिकों में आलस्य का अभाव होकर

उदासीनवदासीनो गणैर्यो न विचाल्यते
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।
समदुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
तुल्यप्रियाप्रियो धरिस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

जो एक प्रकार की चेतनता होती है, उसका नाम 'प्रकाश है) और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को (निद्रा और आलस्य आदि की बहुलता से अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनाशक्ति के लय होने को यहाँ 'मोह' नाम से समझना चाहिए) भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है (जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही नित्य, एकीभाव से स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी माया के प्रपंचरूप संसार से सर्वथा अतीत हो गया है, उस गुणातीत पुरुष के अभिमानरहित अन्तःकरण में तीनों गुणों के कार्यक्रम, प्रकाश-प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियों के प्रकट होने और न होने पर किसी काल में भी इच्छा-द्वष आदि विकार नहीं होते हैं। यही उसके गुणों से अतीत होने के प्रधान लक्षण हैं) तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नही किया जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते है (त्रिगुणमयी माया से उत्पन्न हुए अन्तःकरण के सहित इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों में विचरना ही 'गुणों का गुणों में बर्तना' है), ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है । और जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित हुआ दुःखसुख को समान समझनेवाला है तथा

मेरा यही प्रकाश-स्तम्भ है और मैं समझता हूँ कि इसी में आत्म-शान्ति और विश्वशान्ति है।

प्रश्न—साहित्यकार के साथ-ही-साथ आप एडवोकेट भी हैं, कृपया बतावें कि गांधी जी ने जो यह कहा है कि वकालत का पेशा भी बिना झूठ बोले चल सकता है, यह कहां तक सम्भव है? आपको एडवोकेटी और साहित्यकारिता में से किसमें अधिक सफलता मिली है।

उत्तर—बिना झूठ बोले वकालत नहीं चल सकती, जो जितनी ही सफाई से झूठ बोल सके वह उतना ही बड़ा वकील। गाँधी जी को वकालत में सफलता नहीं मिली। वे राजनीतिक थे और वे राजनीति में ही सफल हुये। मुझे साहित्य में सफलता मिली है, एडवोकेटी में नहीं। मैं जब वकालत करता था तो मेरा हृदय मुझे कचोटता रहता था कि यह तुम क्या कर रहे हो। कई बार मुझे आत्मग्लानि हुई और मैंने बहुत दिन हुये वकालत छोड़ दी।

मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समान भाववाला और धैर्यवान है तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाववाला है तथा जो मान और अपमान में सम है एवं मित्र और वैरी के पक्ष में सम है, वह संपूर्ण आरम्भों में कर्त्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष, गुणातीत कहा जाता है। और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के (केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ही अपना स्वामी मानता हुआ, स्वार्थ और अभिमान को त्यागकर, श्रद्धा और भाव के सहित परम प्रेम से निरन्तर चिन्तन करने को 'अव्यभिचारी भक्तियोग' कहते हैं) द्वारा मेरे को निरन्तर भजता रहता है, वह इन तीनों गुणों का अच्छी प्रकार उल्लङ्घन करके, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के योग्य होता है।

प्रश्न—सम्भवतः आपने अनुभव किया हो कि हिन्दी भाषा-भाषियों में साहित्य-अध्ययन की ओर कोई भी विशेष अभिरुचि नहीं है। क्या आप कोई मार्ग बतला सकते हैं कि जिसके अपनाने से जनता में साहित्य के प्रति अभिरुचि जगाई जा सकती है ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में मैं दतिया में होने वाले इसी वर्ष (१९५६) के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में दिये गये भाषणों की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। साथ ही मेरा एक सुझाव यह है कि प्रत्येक नगर में साहित्य-प्रचार की समितियाँ बनाई जायँ और इन समितियों में लेखकों, प्रकाशकों, साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले धनवानों और सरकार के शिक्षा-प्रसार विभागों की सहायता से उत्कृष्ट सत्साहित्य एकत्रित करके घर-घर पढ़ने के लिये बिना मूल्य पुस्तकें दी जायँ और कुछ समय बाद उन्हें माँग लिया जाय। इसी प्रकार से एक-एक क्षेत्र में इस काम के करने का कार्यक्रम बना लिया जाय तो अवश्य ही पठन-पाठन की तरफ जनता का ध्यान कुछ आकृष्ट किया जा सकता है। अभी हाल ही में विधान-परिषद् में सुश्री महादेवी वर्मा ने जो यह कहा है कि देश का कार्य केवल भौतिक उन्नति से ही नहीं चल सकता, मानसिक और सांस्कृतिक विकास की भी आवश्यकता है, सो सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये। सरकार संस्कृति और साहित्य के प्रचार के लिये एक निधि तथा एक समिति निर्धारित करे तो सचमुच कुछ अच्छा परिणाम निकल सकता है।

प्रश्न—जीवन की कोई अविस्मरणीय घटना सुनाइये।

उत्तर—मेरे जीवन में अविस्मरणीय घटनाएँ बहुत-सी घटी हैं। शिकार में शौक होने के कारण अत्यधिक घटनाओं के बीच रहा हूँ। 'दबे पाँव' नामक मेरी पुस्तक घटनाओं से ही कलेवरित है। यहाँ पर मैं एक अनोखा प्रसंग रख रहा हू, जो मेरे विचार से एक घटना ही है क्योंकि मैं उसे भी कभी भुला नहीं पाया। मैं हरिद्वार की यात्रा पर गया था। वहाँ से जब ऋषीकेश की ओर जा रहा था तो मार्ग में कुछ साधु मिले

जिनमें से एक ६ फीट लम्बा था और उसके मुख पर तेज बरस रहा था। ये सभी साधु मिट्टी की एक-एक मटकी लिये थे। मैंने उस लम्बे-चौड़े साधु से पूछा—महाराज आपका निवास-स्थान कहाँ है ? उसने उत्तर दिया—क्या करियेगा जानकर, यहीं कहीं पहाड़ पर रहता हूँ। मैंने पूछा—आप यहाँ के ही निवासी हैं ? उसने उत्तर दिया—नहीं, मै ६० वर्ष पूर्व नैपाल से यहाँ आया था। मैंने पूछा—आपकी आयु क्या है ? उसने कहा ९१ वर्ष—मैं विस्मय में पड गया। मैंने उनका नाम पूछा तो वे बहुत ही विनयी होकर बोले—क्या करियेगा जानकर, हम मामूली साधु हैं। कुछ भजन-कीर्तन कर लेते हैं। मुझे उसकी नम्रता पर उसकी महानता का आभास मिला। वह अवश्य ही कोई सिद्ध साधु था। मैंने उसका जैसा तेज पहले नहीं देखा था। मैंने जितना ही उससे निकट होने का प्रयास किया, वह उतनी ही जल्दी अपने साथियों के साथ वहाँ की पगडंडियों में लुप्त हो गया। मैं आज भी उसके तेजोमय आनन को नहीं भुला सका। निश्चय ही यह मेरे लिये एक अविस्मरणीय घटना है।

बुरों से भी भला, भलों से भी बुरा होता है। जो किसी काम के नहीं होते, उनका काम भी कितनों की आँखें खोलता है। और जो बड़े काम के होते हैं. उनका काम भी कभी काम का नहीं होता। कौवे किसी काम के न हों, पर कोयल के बच्चे उसी की गोद में पलते हैं। साँप कितना ही डरावना क्यों न हो, पर मणि उसके ही सिर में मिलती है। एक गाली बकने वाला अपना मुँह बिगाड़ता है, पर कितनों के कान खड़े करता है। एक सिर पर चढ़ा भूत दूसरे के सिर का भूत उतारता है। एक नंगा कितनों की आबरू बचाता है। डूब कर पानी पीने वालों के गले में अटकी मछली कितनों का कान मलती है और बहुतों का पानी रखती है। मिट्टी में हीरे मिलते हैं, बालू मे सोना। कीचड़ में कमल, और काँटों में फूल। अँधियाले से उजाले की परख होती है। कड़वी नीम मिठाई का मोल बतलाती है।

मतलब यह कि 'रचनाओं' को इन झगड़ों से छुटकारा नहीं। जहाँ उसे भली आँख से देखने वाले होंगे, वहीं उसे टेढ़ी आँख से ताकने वाले भी मिलेंगे। वे किसी के जी में अगर गड़ेंगी, तो किसी के आँख में खटकेंगी भी। कोई उन्हें चाहेगा, तो कोई बुरा कहेगा। दुनियाँ के ये पचड़े हैं, इनसे कौन बचा। इसीलिए मैं इन बातों के फेर में नहीं पड़ता। थूकने वाले सूरज पर भी थूकते हैं, चाहे उनका थूक मुँह पर ही क्यों न गिरे।

—हरिऔध

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

लेखक अपने मित्रों एवं पत्नी के सहित राहुल जी के साथ

परिचय

आपका जन्म सन् १८९५ ई० में उत्तर प्रदेश के जनपद आजमगढ़ में स्थित दुलहूपुर स्टेशन से ६ मील उत्तर एक किसान के यहाँ हुआ। आपका शुरू का नाम केदारनाथ पाण्डेय है। काशी में आकर आपने कबीर-चौरा नामक स्थान पर रह कर संस्कृत का अध्ययन किया। वही से आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ, किन्तु वैष्णव पंथी साधुओं की प्रवृत्ति आपको रुचिकर न लगी। आप आर्य-समाज के कार्यों में विशेष रुचि रखने लगे। धीरे-धीरे आप आर्य-समाज के प्रचारक भी बने। इस काल में आपका अध्ययन अन्य धार्मिक ग्रन्थों का भी हुआ। कुछ समय बाद आपने बौद्ध-धर्म को अपनाया और तभी आप पूरे साधु हो गए। आपने अपना नाम रामोदर साधु रखा। आपके वस्त्रों में एक अलफी, एक कपड़े का टुकड़ा, एक चोगा और बिस्तर में एक दरी और एक चादर ही पर्याप्त हुई। १९२७ में आप बौद्ध-भिक्षु के रूप में लंका गए। वहाँ आपने पालि-भाषा का अध्ययन किया और आपने सम्पूर्ण पालिवाङमय का गहन अध्ययन किया। वहाँ से आप कुछ समय के लिए कलकत्ते आए और वहाँ एक अन्य बौद्ध-भिक्षु ने रामोदर साधु को सिंहलद्वीप में संस्कृत के प्रोफेसर के रूप में जाने की सलाह दी। यही नहीं, उस भिक्षु ने लंका की संस्कृत-पाठशाला में इनकी व्यवस्था भी कर दी। अब रामोदर साधु धोती, कमीज और चप्पल में रहने लगे और वे पूरे-पूरे अध्यापक बने। वहीं आपकी पहली भेंट भदंत आनन्द कौशल्यायन जी से हुई। लंका में रह कर आपने जिस गुरुता और परिश्रम से अध्ययन और अध्यापन का कार्य किया,

उसके फलस्वरूप ही आप महापण्डित कहलाने लगे। आपकी दिनचर्या इस प्रकार थी—६ से ६-३० तक शौच, स्नान व शीर्षासन। ६-३० से १२ तक बराबर पढ़ना, बीच में केवल १० मिनट में जलपान। बारह बजे भोजन। तत्पश्चात् से ६ बजे शाम तक भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाना। ६ से ७ तक घूमना-फिरना और कुछ जलपान। ७ से ९ तक पढ़ना-लिखना। ९ से ९-३० तक भोजन और फिर ९·३० से १२ बजे तक पढ़ना लिखना। १२ से ६ बजे तक सोना।

'लंका' नामक पुस्तक आपने यहीं लिखी। इन्हीं दिनों आप 'सरस्वती' पत्रिका में लेख भेजा करते थे और उसमें अपना नाम केवल रा० सा० देते थे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती से अलग हो चुके थे, किन्तु सरस्वती से सम्बन्धित उतने ही रहे। उन्होंने तत्कालीन सम्पादक से पूछा था यह कौन विभूति हिन्दी में चली आ रही है।

१९३० में आपका धोती और कुर्ता हटा और आपने पीतवस्त्र धारण किए और रा० सा० से वे राहुल सांकृत्यायन हुए। राहुल सांकृत्यायन ने रामोदर साधु को मिटा दिया था या यों कहिए रामोदर साधु ने ही राहुल सांकृत्यायन को बनाया।

१९३२ में राहुल जी कौशल्यायन जी के साथ इङ्गलैंड गए। वहाँ पहुँच कर आप सम्पूर्ण योरप घूमे। लगभग ३ महीने में ही उन्होंने सम्पूर्ण योरप घूम कर 'मेरी योरप यात्रा' पुस्तक लिखी। १९३२ में ही आपने बौद्ध-ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया। १९३५-३६ में लगभग १६ घंटे वे लिखते-पढ़ते थे और केवल ८ घंटे सोने में या भोजन आदि में व्यय करते थे।

राहुल जी ने जब पहली बार रूस में पैर रखे तो केवल २४ घंटे ही वहाँ रहने दिए गए थे। दोबारा जब गए तो वहाँ ६ महीने रहे। फिर तो वे वहाँ के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के इंडालाजिकल विभाग में संस्कृत के प्रोफेसर हो गए।

आपने चीन-जापान की भी यात्रा की और तिब्बत की यात्रा आपकी बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई। आपने शोध के कार्यों में बहुत बड़ी सेवाएँ दीं। आपकी खोज-सामग्री के प्रतिस्वरूप ही पटना संग्रहालय में राहुल-कक्ष खुला हुआ है। आप लगभग १८ भाषाओं के ज्ञाता हैं और हिन्दी, उर्दू, बँगला, संस्कृत, अँग्रेजी, पाली, तिब्बती, सिंहली, प्राकृत और रूसी भाषा में विशेष अधिकार रखते हैं।

आजकल आप अपने निजी बंगले में मसूरी में रहते हैं। अब तक आपकी १२५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

यात्रा—मेरी लद्दाख-यात्रा, लंका, तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी तिब्बत-यात्रा, मेरी योरोप-यात्रा, जापान, ईरान, रूस में पचीस मास, यात्रा के पन्ने, यात्रावलि १ भाग, घुमक्कड़-शास्त्र, **देश-दर्शन**—सोवियत् भूमि १, २ भाग, सोवियत्-मध्य-एशिया, किन्नर-देश में, दार्जिलिङ्ग-परिचय, हिमालय-परिचय (तीन भाग) गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल। **साम्यवाद और राजनीति**—बाईसवीं सदी, साम्यवाद ही क्यों, तुम्हारी क्षय, दिमागी गुलामी, क्या करें, सोवियत् न्याय (अनुवाद), राहुल जी का अपराध, सो० सं० कम्युनिस्ट-पार्टी का इतिहास १, २ भाग, मानव समाज, आज की समस्यायें, आज की राजनीति, भागो नहीं बदलो। **दर्शन**—वैज्ञानिक भौतिकवाद, दर्शन-दिग्दर्शन, बौद्ध दर्शन। **विज्ञान**—विश्व की रूपरेखा। **साहित्य और इतिहास**—पुरातत्व-निबंधावलि, तिब्बत में बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म की रूपरेखा, हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश), दखिनी हिन्दी काव्यधारा, बौद्ध संस्कृति, मध्य-एशिया का इतिहास १, २ भाग आदि, हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, साहित्य-निबंधावलि। **उपन्यास-कहानी आदि**—जीने के लिये, सिंह सेनापति, जय यौधेय, मधुर स्वप्न, विस्मृत यात्री, सतमी के बच्चे, वोल्गा से गंगा। **अनुवाद**—शैतान की आँख, विस्मृति के गर्भ में, जादू का मुल्क, सोने की ढाल, दाखुंदा,

जो दास थे, अनाथ मदीना, सूदखोर की मौत, शादी, राजस्थानी रनिवास। **जीवनी**—मेरी जीवन-यात्रा १, २ भाग, सरदार पृथ्वीसिंह, नये भारत के नये नेता, अकबर। **बौद्ध धर्म**—बुद्धचर्या, मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय, विनयपिटक, धम्मपद, बौद्ध दर्शन, बौद्ध संस्कृति, तिब्बत में बौद्ध धर्म। **भोजपुरी नाटक**—तीन नाटक, पाँच अप्राप्य। **संस्कृत**—(संपादित या टीकाकृत; विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः (अनूदिता), अभिधर्मकोशः (टीका), प्रमाणवार्त्तिकम्, प्रमाण-वार्त्तिक-स्ववृत्ति-टीका, प्रमाणवार्त्तिकभाष्यं, निदान-सूत्रं (अनूदितं) संस्कृत काव्यधारा महापरिनिर्वाणसूत्रं (अनूदितं)। **संस्कृत सिंहल**—१, २, ३, ४, ५ पुस्तकें। **तिब्बती**—तिब्बती बालशिक्षा, तिब्बती व्याकरण १। **अँग्रेजी**—From Volga to Ganga।

भेंट*

मेरा पहला प्रश्न था—'**अपने प्रारम्भिक जीवन पर कुछ प्रकाश डालें। लिखने-पढ़ने की भीषण प्रवृत्ति जागृत करने में कौन-सा व्यक्ति अथवा वातावरण प्रमुख प्रणेता रहा** ?'

राहुल जी ने उत्तर संक्षिप्त दिया—'मेरी पुस्तक, '**मेरी जीवन यात्रा' पढ़ें।**'

'**आपने अनेक धर्मों का सद्यः अध्ययन किया है। कृपया बतायें उनका सिद्धान्ततः मूल अन्तर क्या है ? क्या बौद्धधर्म वास्तव में अन्य धर्मों से श्रेष्ठ प्रमाणित हुआ है ? धर्म के सम्बन्ध में व्यक्तिगत आपके क्या विचार है** ?'

राहुल जी ने इस प्रश्न के उत्तर में भी अपनी पुस्तकें ही पढ़ने की सलाह दी। मैंने कहा—'पुस्तक पढ़ कर ही यदि सब उत्तर प्राप्त करने होते तो फिर आपको कष्ट ही क्यों देता ? इण्टरव्यू तो प्रत्यक्ष विचार प्राप्त करने के लिए लिया जाता है और साथ ही जिस जानकारी को हम ५०० या १००० पृष्ठ पढ़ कर सविस्तार प्राप्त करते हैं उसी का सार हम कुछ थोड़े से शब्दों में संक्षिप्त रूप से उपलब्ध कर लेते है।

---

*राहुल जी से साहित्यिक भेंट जो ली गई उसका ढंग कुछ असाधारण था। उनसे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में बीच-बीच में बहुत से नए-नए प्रश्न खड़े हो जाते थे, जिससे पृथक् होना सम्भव नहीं हो सका; साथ ही राहुल जी से वार्तालाप करने के सम्बन्ध में जो कुछ भी बातें हुईं या सामने आईं उनका कोई रूप या अंश छोड़ना असम्भव-सी बात थी, फलतः इस भेंट को एक स्वतंत्र लेख के रूप में लिपिबद्ध किया है।

पुस्तकें पढ़ कर किसी विषय की जानकारी अथवा व्यक्ति के विचार जानने के अर्थ यह हुये कि केवल वे थोड़े से लोग ही कुछ जान सकें जो सभी पुस्तकें उपलब्ध कर सकें अथवा जो पठन-पाठन में इतना समय दे सकें कि हजारों पृष्ठों पर मुद्रित विचारों को बटोर सकने का अवसर निकाल सकें ।'

राहुल जी बोले —'ठीक है, किन्तु आपका प्रश्न ही ऐसा है कि जिसका छोटा-मोटा उत्तर दिया ही नहीं जा सकता । प्रश्न गम्भीर है । इसका उत्तर विस्तार से देना ही उचित समझता हूँ ।' मैंने कहा—'तो फिर समस्या तो हल नहीं हुई । अधिक नहीं, **आप धर्म के सम्बन्ध में व्यक्तिगत विचार तो दे ही दीजिये** ।' वे बोले—'थोड़ा बोल कर बन्धन में बँधना नहीं चाहता, जिस वस्तु के लिए जितने विस्तार की आवश्यकता है, वह उतन में ही शोभा देती है । आप अन्य प्रश्न करें, अब मैं उत्तर दूँगा ।

मैंने तीसरा प्रश्न किया—'**भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जो न भूल सका' में 'धर्म व्यक्तिगत चीज है' शीर्षक से कुछ संस्मरण लिख कर उस समाज की कल्पना की है जिसमें एक ही परिवार में माता हिन्दू, पिता बौद्ध, पुत्र मुसलमान और पुत्री ईसाई हो, फिर भी वे सम्मिलित रहते हों; साथ ही उनके सामाजिक जीवन में कोई कठिनाई न दिखाई दे । आप ऐसे समाज की भारत में कहाँ तक सम्भावना देखते हैं** ?'

राहुल जी ने उत्तर दिया—'मैं कौशल्यायन जी से पूर्ण सहमत हूँ । मैंने भी अपनी एक पुस्तक में ऐसे समाज की चर्चा की है । चीन में तो आज ऐसे परिवार व्याप रहे हैं । आप मेरी पुस्तक '**नये भारत में नये नता**' में डा० के० एम० अशरफ के सम्बन्ध में पढ़िये । भारत में आपको ऐसे परिवार मिल सकते हैं, हाँलाकि वे अभी बहुत कम हैं । धर्म व्यक्तिगत वस्तु तो है ही ।'

मेरा चौथा प्रश्न था--'**क्या आपका विश्वास है कि सम्पूर्ण विश्व में एक दिन साम्यवाद समान रूप से व्यापेगा ? यदि हाँ, तो भू-मण्डल पर एकाधिपत्य सरकार के स्थापन की सम्भावना कहाँ तक है** ?'

राहुल जी ने दृढ़ उत्तर दिया--'हाँ, साम्यवाद अवश्य सम्पूर्ण विश्व पर अपनाया जायगा।' मैंने कहा-'**तो एकाधिपत्य सरकार के स्थापन के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं** ? राहुल जी बोले—'सम्पूर्ण विश्व में एक ही सरकार हो, यह कल्पना नहीं की जा सकती । अलग-अलग देशों की सरकारें भी अलग-अलग ही होंगी, किन्तु उनका कार्य और आपस का सहयोग विकेन्द्रित केन्द्रित सरकार के रूप में होगा। आपस के सहयोग और सद्भावना के आधार पर एक दूसरे की आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी। कोई भी देश किसी के आधिपत्य में न होगा और किसी भी देश को दूसरे देश से किसी भी प्रकार का भय न रह जायगा। यथार्थ साम्यवादी व्यवस्था में सेना की आवश्यकता भी नहीं रह जाती। प्रत्येक देश का करोड़ों रुपया जो मात्र एक दूसरे के भय से सुरक्षा में व्यय होता है वह जनहित में व्यय होगा। सेना रखने की तो तभी तक आवश्यकता है जब तक शत्रु मौजूद है, जब तक पूँजीवादी सत्ता कायम है। साम्यवादी देश कभी भी किसी पर आक्रमण करने के विचार से सेनाएँ नहीं रखते। वे केवल अपने बचाव के लिये रखते हैं। सारांश यह कि सम्पूर्ण विश्व यदि एक सरकार के आधिपत्य में नहीं तो एक विचारधारा की सम व्यवस्था के आधिपत्य में तो आ ही जायगा, ऐसी मेरी धारणा है।'

मैं अपने प्रश्नों के साथ आगे बढ़ा। मेरा आगामी प्रश्न था--'**देश-विदेश भ्रमण करते हुय पर्याप्त मात्रा में आपने वहाँ के व्यक्तियों का सम्पर्क पाया है, कृपया देश-देश की व्यावहारिक विशेषता बताएँ और विशेषतया रूस की** ।'

राहुल जी ने मुस्कुराते हुये धीरे से कहा—'आप मेरी पुस्तक '**रूस में २५ मास**' पढ़ें।' मेरे पास प्रश्न पर्याप्त थे, अतः इस प्रश्न पर अधिक उलझना उचित न समझ कर मैंने तुरन्त दूसरा प्रश्न किया—'**राम-कृष्ण और महाभारत की कथाओं को आप ऐतिहासिक मानते हैं अथवा कलाकार-विशेष की कल्पना मात्र** ?'

उत्तर मिला—'प्रश्न कुछ ऐसा है जिसका सीधा उत्तर देना ठीक नहीं समझता। ये तो बहुत खोज की बातें हैं। अब तक इस सम्बन्ध में बहुत कुछ शोध का कार्य हो चुका है, फिर भी कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं निकला है। इतना अवश्य है कि यदि मैं इनकी आस्था को ऐतिहासिक मानूँ भी तो जिस रूप में रामायण और महाभारत लिखी गई है वह कभी भी १६ आना मान्य नहीं हो सकती। उसमें बहुत-सी कथायें बिल्कुल यथार्थ से परे हैं और घटनायें कल्पना से परे हैं। एक बात और है, इनका काल भी निर्धारित नहीं हो पाया है। रामायण, भागवत और महाभारत के कुछ अन्य प्रमुख पात्रों का सम्पर्क जिन-जिन लोगों से हुआ है उनके जीवन-काल और राम-कृष्ण, अर्जुन आदि के जीवन-काल में साम्य नहीं मिलता। एक व्यक्ति एक युग का है, किन्तु फिर वही दूसरे युग में भी दिखाई देता है। जैन और बौद्ध दर्शन के आधार पर तो राम अयोध्या के नहीं, काशी के माने जाते हैं। उनके ग्रन्थ इन्हीं राम को काशी के प्रमाणित करते हैं। जो कार्य अयोध्या के राम ने किये हैं, उन्हीं से मिलते-जुलते काशी के राम ने भी किये हैं। खोज हो तो वास्तविक स्थिति ज्ञात हो। वैसे राम और कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति हो सकते हैं। तुलसीदास जी ने रामायण जो लिखी उसका आधार वाल्मीकि की रामायण नहीं था। उन्होंने रामचरित-मानस ग्रन्थ शंभू कवि की रामायण से प्रभावित होकर लिखा है। कुछ रामायणों के पीछे यह छपा भी हुआ है। तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है वह इतिहास के सिद्धांतों के आधार पर नहीं लिखा है। उन्होंने केवल अपने आराध्य

की आराधना में बह कर भावुक होकर लिखा है। ऐसी ही बात कृष्ण की लीलाओं के साथ में भी है। महाभारत की घटनायें और कथायें भी ऐतिहासिक कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं। सम्भव है ऐसा कोई बड़ा युद्ध हुआ हो और हुआ होगा, किन्तु जिस रूप में महाभारत है वह सर्वमान्य नहीं है।'

राहुल जी ने शंभू कवि की रामायण निकाल कर मुझे सुनाई भी। वे पूरे मूड में थे। मैंने उनसे फिर एक प्रश्न किया।

'विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता के नाते विभिन्न भाषाओं के अक्षरों के बटखरों से तौलते हुये विचार प्रगट करें--क्या हिन्दी कभी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का रूप ले सक ी है ?'

'रूप लेने का प्रश्न ही नहीं है, वह तो एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के माने वह भाषा जो विभिन्न देशों में सीखी और सिखाई जाय। भारत में हिन्दी जब से राष्ट्र-भाषा घोषित हुई है लगभग सभी प्रगतिशील और उन्नतिमय देशों में यह सीखी जाने लगी है। हिन्दी को अब तक जो स्थान ले लेना चाहिये था वह केवल इसीलिये ही नही ले सकी कि हमारी सरकार ही ने उसका उपयोग नहीं बढ़ाया। आज भी हमारे देशदूत हिन्दी में पत्र-व्यवहार करना गर्व का विषय नहीं समझते। हमारे देश के प्रतिनिधि तो दूर-दूर तक फैले हैं और अन्य देशों के प्रतिनिधि भी पर्याप्त संख्या में भारत में है। केवल इन्हीं सब में यदि पत्र-व्यवहार हिन्दी में हो तो हिन्दी का अच्छा प्रसार हो सकता है। अन्य देशों के जितने भी प्रतिनिधि यहाँ भेजे जाते हैं उन सबको भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दो सिखा कर भेजा जाता है। अब हम लोग ही उनसे हिन्दी में बात न करें तो उनका क्या दोष ? वास्तव में हिन्दी तो विश्व की इनी-गिनी भाषाओं में से एक है। इस समय इसका स्थान चौथा है, किन्तु कुछ ही समय बाद जब यह उत्तर से दक्षिण

तक सीख ली जायगी तो इसका स्थान दूसरा हो जायगा। इस समय सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा चीन की राष्ट्रभाषा पेकिंग के क्षेत्र वाली है। दूसरा स्थान रूसी भाषा का है। वैसे तो रूस में अनेक भाषाएँ हैं, किन्तु जो राष्ट्र-भाषा है वह अपना स्थान विश्व में दूसरा रखती है। रूसी भाषा के बाद अँग्रेजी का स्थान है। यह साम्राज्यवाद के साथ बढ़ी थी और उसी के साथ अब सिमट भी रही है। भारत की बड़ी जनसंख्या और उसके विदेशी सम्बन्ध ही हिन्दी को विश्व की एक अत्यन्त आवश्यक भाषा बना रहे हैं। हिन्दी सिखाने का प्रयास जितना यहाँ नहीं हो रहा है उससे अधिक विदेशी विश्वविद्यालयों में हो रहा है। सम्पूर्ण भारत राष्ट्र जब हिन्दी भाषा सीख चुकेगा तो हिन्दी विश्व की भाषाओं में अपना दूसरा स्थान बना लेगी। इसलिये हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है ही।'

मैंने राहुल जी के इस उत्तर से एक प्रकार का सुख अनुभव किया। मेरी आत्मा प्रसन्न हुई। मैंने राहुल जी के सम्मुख फिर एक प्रश्न जन-रुचि के विचार से रखा। मेरा प्रश्न था—

'अपने सबसे प्रिय कलाकारों, वस्तुओं और व्यक्तियों का नाम प्रस्तुत सूची के आधार पर बताने का कष्ट करें—कवियों में, अभिनेता और अभिनेत्रियों में, चित्रकारों में, पुस्तकों में, सामयिक पत्रों में, सम्पादकों में, नेताओं में, वस्त्रों में और भोजन में।'

'कवियों के विषय मे कुछ कहना कठिन है क्योंकि उनकी जो भी रचनायें पढ़ी हैं वे आनन्द के लिये, आलोचना की दृष्टि से कम पढ़ी हैं। काव्य मेरा विषय नहीं रहा है। अभिनेता और अभिनेत्रियों को तो मैं जानने का अवसर ही नहीं पाता। मेरी रुचि उधर नहीं रही है। चित्रकला से प्रेम अवश्य रहा है, कला की सराहना करता हूँ, किन्तु किसी कलाकार का नाम नहीं लूँगा। पुस्तकें मुझे प्रिय हैं और उसमें भी अपने विषय (दर्शन और इतिहास) की पुस्तकें अत्यन्त प्रिय हैं। अपने पुस्तकालय में

मैंने उन्हें संग्रह भी किया है और पढ़ा भी है। सामयिक पत्रों के बारे में क्या कहूँ, हिन्दी के पत्रो की दशा खराब है। आज निकलते हैं और कल बन्द हो जाते हैं। कुछ एक पत्र अपना स्थान बनाते-बनाते समाप्त हो जाते हैं। मैं वास्तव में वे पत्रिकायें पसंद करता हूँ जो किसी भी क्षेत्र से संकीर्ण न हों। सभी प्रकार के विचारों को पाठकों के सामने आने का अवसर दें। संपादकों के लिये क्या कहा जाय। वे बेचारे तो जिसका खाते हैं उसी का गाते हैं। स्वतंत्र पत्र यहाँ कम दिखाई देते हैं। रोजी-रोटी के सवाल के आगे अच्छे-अच्छे योग्य व्यक्तियों के हाथ-पैर बँध जाते हैं। कलकत्ते के **'नया समाज'** को ही लीजिये, वह कहाँ से कहाँ हो गया। वैसे कुछ पत्र ऐसे अब भी हैं जो सब प्रकार की विचार-धारा अपने पाठकों के सामने रख कर उन्हें और ऊँचा सोचने का अवसर देते है। पार्टी के पत्र भी कोई विशेष आकर्षण नहीं रखते क्योंकि वे सीमित क्षेत्र में ही अधिकतर पढ़े जाते हैं। केवल मनोरंजन की दृष्टि से जो पत्र निकलते है उनसे व्यावसायिक लाभ भले ही हो, किन्तु नैतिक लाभ कम होता है, हानि अधिक होने की सम्भावना रहती है। अब मैं नेताओं के बारे में आपको क्या बताऊँ ? वैसे पार्टी जो मुझे प्रिय है उसे तो आप जानते ही हैं। मुझे किसी व्यक्ति विशेष का नेतृत्व पसंद नहीं है। मैं सामूहिक नेतृत्व चाहता हूँ। किसी एक व्यक्ति पर आश्रित होना खतरा मोल लेना है। जागरुक होकर किसी का भी अनुसरण किया जा सकता है। निश्चित योजना के अनुसार ईमानदारी से जो आगे चले वही हमारा नेता है। अब आपके इस प्रश्न में क्या रह गया ?'

मैंने कहा—**'वस्त्र और भोजन।'**

वे बोले—'वस्त्र सभी अच्छे है। अपने-अपने देश की जलवायु और प्रथानुसार इनका चलन होता है। मै जब रूस में था तो कोट-पतलून पहनता था, उसमें सुविधा मालूम होती थी। यहाँ भारत में गर्मी है, मै कुर्ता और पायजामा पसंद करता हूँ। वास्तव में वस्त्र तो पहले आवश्यकता

और फिर रुचि के अनुसार पहने जाते हैं । भोजन का भी बहुत कुछ वही हाल है । एक चीज जो यहाँ खाना पाप समझा जाता है, दूसरी जगह वही खाना वहाँ का मुख्य भोजन होता है। वे यदि उसे न खायें तो सम्भवत: जीवित न रहें । जहाँ जो वस्तु होती है वहाँ वही खाई जाती है । पंजाबी गेहूँ के प्रेमी हैं तो बङ्गाली और मद्रासी चावल के । मुझे दोनों ही प्रिय हैं । विदेश में रह कर मैंने गोश्त का स्वाद पाया । वह अब मेरे भोजन का एक अंग है । मुझे रोटियाँ प्रिय हैं ।'

मेरी और राहुल जी की वार्ता चल ही रही था तभी बीच में ही पं० जयगोपाल जी मिश्र आकर बैठ गये थे । वे हम दोनों की चर्चा सुनते-सुनते बीच में बोले—'एक प्रश्न मैं भी करना चाहता हूं ।' राहुल जी ने कहा पूछिये । जय गोपाल जी ने प्रश्न किया—

'भारत के बाहर संस्कृत का सबसे बड़ा विद्वान आपकी जानकारी में कौन आया ?'

राहुल जी ने तुरन्त उत्तर दिया—'स्वर्गीय डाक्टर शेर वास्की। उनकी योग्यता को मैं कभी नहीं भूल सकता । वे संस्कृत के सभी महत्व-पूर्ण ग्रन्थों के ज्ञाता थे । उन्हें कितनी ही चीजें कण्ठस्थ थीं । रूस में उनका काफी नाम है ।'

मेरा अगला प्रश्न राहुल जी के व्यक्तिगत जीवन को कुछ छूता हुआ था—**'पुरुष के जीवन में एक स्त्री अपना क्या स्थान रखती है और स्त्री का पत्नी के रूप में पति पर क्या अधिकार है ?'**

राहुल जी ने मन्द मुस्कान के साथ उत्तर दिया—'अधिक विस्तार में मैं न कह कर केवल यह कहूँगा कि स्त्री और पुरुष में कोई बड़ा-छोटा नहीं है । दोनों समानाधिकारी हैं । दोनों को एक दूसरे पर समान अधिकार है । आपस के आकर्षण और समझौते से यह सम्बन्ध होता है और आपस के समझौते से ही जीवन के क्षेत्र के काय भी बाँट लिए जा

सकते हैं । दोनों मिल कर ही एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। मैं तो दोनों को बराबर का ही मानता हूँ । पुरुष के जीवन में स्त्री अपना क्या स्थान रखती है, यह प्रश्न खड़ा नहीं होना चाहिए । साथ ही पत्नी का पति पर कोई विशेष अधिकार हो, जो पति को प्राप्त नहीं है, यह भी समझना भूल ही है ।

समय बहुत काफी हो चुका था । कमला जी (राहुल जी की नवीन पत्नी) ने सूचना दी कि चाय तैयार है । हम लोग अपनी वार्ता समाप्त कर चाय की गोल मेज पर आये । बढ़िया किस्म के बिस्कुट और दालमोट के साथ चाय मेज पर लगी थी । मेज के चारों ओर हम लोग इस क्रम से बैठे--पहले राहुल जी, उनके बाईं ओर मैं, मेरे बाईं ओर मेरी पत्नी, उनके बाद कमला जी, फिर जयगोपाल जी और उनके बाद अर्थात् राहुल जी के दाहिनी ओर डा० शिवगोपाल जी ।

जलपान करते समय मेरी पत्रिका 'कल्पना' की कुछ चर्चा चली। अन्य बातें भी हुई जो उल्लेखनीय नहीं हैं । हाँ, राहुल जी के स्वास्थ्य के विषय में जब पूछा, तो वे बोले--'आजकल इंजेक्शन ले लेकर काम करने की शक्ति पा लेता हूँ ।'

जलपान के बाद ही राहुल जी फिर अपने कमरे में चले गये और टाइपरायटर को पिटपिटाने लगे । इसी समय उनसे सम्भवतः पाली-भाषा पढ़ने के लिये एक सज्जन आ पहुँचे जो कुछ सप्ताह से राहुल जी के अतिथि-गृह में टिके थे ।

मेरी पत्नी, अन्दर कमला जी के कमरे में कमला जी की कहानियों के संग्रह के साथ लिप्त हुई और मैं राहुल जी की पुस्तक **'मेरी जीवन यात्रा'** को पढ़ने में जुट गया। जयगोपाल जी और डा० शिवगोपाल जी पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों से उलझ गये ।

पुस्तकों के साथ समय का बीतना अनुभव नहीं होता । कुछ ही देर

बाद 'भोजन तैयार है' का समाचार आया। हम लोग पुनः गोल मेज के चारों ओर बैठ गये। बैठने का क्रम लगभग पूर्ववत् था, केवल कमला जी साथ में न बैठी थीं। वे भोजन परोसने के कार्य में व्यस्त हुईं। दाल, रोटी, तरकारी और चावल अलग-अलग थालियों में लग कर हम लोगों के सामने आया। राहुल जी की थाली में गोश्त भी था। खाना शुरू हुआ और साथ ही कुछ बातें भी होने लगीं। मैंने राहुल जी से पूछा—**'गाय का गोश्त खाने से मस्तिष्क कमजोर होता है, ऐसा प्रायः सुनने में आया है, कृपया आपके विचार मिल सकेंगे क्या ?'** वे बोले—'वेद-पुराण के लिखने वाले तो गाय का गोश्त खाते थे, किन्तु उनका मस्तिष्क तो कमजोर नहीं हुआ। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वे लोग शिकार करते थे और मांस खाते थे। गाय के गोश्त के न खाने की कहीं भी चर्चा नहीं मिलती। वास्तव में बात यह है कि गाय का गोश्त गरिष्ट होता है, मोटा होता है और जल्दी पचता नहीं। इन्हीं कुछ कारणों से उसे खाना नहीं पसन्द किया जाता, वैसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जानवर बकरा भी है और गाय भी।'

भोजन समाप्त होने को आया। मैंने आगे कोई भी प्रश्न नहीं किया। जिसका-जिसका भोजन खतम हुआ वह उठता गया। हाथ धोने के बाद हम लोगों ने कुछ आराम किया। दोपहर हो गई थी, किन्तु बदली के कारण सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था। राहुल जी के बंगले के पास ही एक बहुत बड़ी घाटी है जो अत्यन्त रम्य स्थान है। मै अपनी पत्नी के सहित उसे देखने गया। ठंडी-ठंडी हवा बह रही थी। नीचे गाँव बसा था जिसके मकान गुड़ियों के घर के समान दिखाई दे रहे थे। बादल के टुकड़े हम लोगों से नीचे उस घाटी में उड़ रहे थे। प्रकृति की गोद में कहाँ क्या क्रीड़ा हो रही है उसका क्षणिक दर्शन उस स्थान पर मिला। थोड़ी ही देर म सूरज अपनी प्रखर किरणों से बादलों को चीरता हुआ दिखाई दिया और हम लोग अब बंगले की ओर लौट पड़े। राहुल जी के निजी

कक्ष की सीढ़ियों के पास पहुँचा तो राहुल जी को अपने कैमरे से तैयार पाया। हम लोगों को वास्तव में यह देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हीं ने कमला जी को अन्दर से बुलाया और साथ ही जयगोपाल जी व डा० शिवगोपाल जी को भी अपने कैमरे के सामने खड़ा किया। हम दोनों भी इस ग्रुप में खड़े हुये और फिर कमला जी ने एक चित्र हम लोगों का राहुल जी के साथ उतार लिया।

इस समय तक दिन के ३ बज चुके थे। मुझे अब वहाँ से लौटना था। मैंने राहुल जी से चलने की आज्ञा माँगी तो वे बोले--इतनी जल्दी क्या है। इतनी दूर से आना हुआ और.....। मैंने कहा--कुछ घमना-घामना है। अब कभी अकेले आऊँगा तो रुकूँगा। मैं प्रणाम कर चलने लगा तो देखा कमला जी अपने स्वाभाविक स्नेह के नाते मेरी पत्नी से कह रही हैं—चलिये कुछ दूर पहुँचा दूँ। हम लोग उनकी सरलता से बहुत-बहुत कृतज्ञ हुये। वे हैपी वैली की बिड़ला-निवास कोठी तक हम दोनों को पहुँचाने आईं। रिक्शा स्टैण्ड पास ही था, हम लोगों ने कमला जी से बिदा ली और अपने स्थान की ओर चल दिये।

मै बड़ा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति रहा हूँ—जिन्दगी भर मैंने अपने भीतर बड़े-बड़े ऊँचे इरादे सँजोए हैं। मैं नहीं कह सकता, ये ऊँचे इरादे मुझे आज कहाँ ले जाकर छोड़ गये हैं। लेकिन इतना मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि इन आलीशान इरादों में आज शायद ही कोई मेरे भीतर शेष बचा हो।

दरअसल, बवण्डरों के समान आनेवाली इन महत्त्वाकांक्षाओं का ताँता आज खत्म हुआ-सा जान पड़ता है......बस, एक महत्त्वाकांक्षा बाकी बच गई है कि आनेवाले बरसों में जितने दिन तक मैं जीवित रहूँ, अपनी समस्त शेष शक्ति और सामर्थ्य इस महादेश भारत के पुन-र्निर्माण में लगाता रहूँ। अतः महत्त्वाकांक्षा के बजाय आप इसे शेष जीवन का संकल्प कह सकते हैं, क्योंकि मैं इस काम को अपनी समूची ताकत से उस समय तक करते रहना चाहता हूँ, जब तक कि मैं स्वयं समाप्त नहीं हो जाता और समाप्त हो गई चीजों के ढेर में फेंक नहीं दिया जाता।

मेरे बाद लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे, इसकी चिंता मुझे नहीं है और मै यह सोचकर भी परेशान नहीं होता कि मेरे बाद मेरी प्रतिष्ठा का क्या रूप होगा। मेरे मनस्तोष के लिए तो मैं बस इतना ही काफी समझता हूँ कि मैंने अपने-आपको, अपनी समस्त शक्तियों को भारत की सेवा मे खपा दिया—मैंने इस मामले में जरा भी कंजूसी नहीं की। मेरे बाद अगर कोई मेरे बारे में सोचे भी, तो मेरी महत्त्वाकांक्षा है कि वह मेरी याद यों करे—'वह एक ऐसा व्यक्ति था, जो जिदगीभर अपने दिल व दिमाग के परिपूर्ण समर्पण के साथ भारत और उसके निवासियों से मुहब्बत करता रहा और भारतवासी भी उसकी खामियाँ दरगुजर करते हुए सदैव उसकी मुहब्बत का प्रतिदान मुहब्बत मे देते रहे।'

—जवाहरलाल नेहरू

महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि निराला महापण्डित राहुल के साथ

परिचय

आपका जन्म बंगाल के महिषादल राज्य के मेदनीपुर नामक स्थान पर हुआ। आपके पिता राज्य के दीवान थे। आपकी शिक्षा स्कूल और कालिज में अधिक न होकर घर पर ही प्रधान रूप से हुई। प्रारम्भ में आपको बँगला और संस्कृत से बोध कराया गया, आगे चल कर आप स्वयं इतने अध्ययनशील हुये कि आपने अपने पौरुष से ही ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अधिकार प्राप्त किया। हिन्दी, उर्दू व अँग्रेजी के साहित्य को भी आपने खूब पढ़ा और साथ ही दार्शनिक अध्ययन भी आपने किया। श्री रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'समन्वय' का आपने सम्पादन किया। बहुत दिनों तक आप 'मतवाला' पत्र में भी सम्पादक रहे। 'निराला' नाम सर्व प्रथम इसी पत्र के द्वारा हिन्दी-जगत् में आया। आपने बहुत से लेख 'गरगज सिंह' और 'साहित्य शारदूल' के नाम से भी लिखे। हिन्दी की कविता को नया मोड़ आपने दिया। गांधी और नेहरू जैसे नेताओं के विरोध में हिन्दी का समर्थन किया। अपनी दानवीरता और सहृदयता के कारण आपने हिन्दी-संसार में अपना 'निराला' व्यक्तित्व उपस्थित किया। आजतक जितनी किताबें आपके व्यक्तित्व के ऊपर लिखी गई, किसी भी साहित्यकार पर नहीं लिखी गई। उत्तर प्रदेश सरकार से आपको 'अपरा' पुस्तक पर २१००) रु० का पुरस्कार मिला और जिसे आपने तुरन्त दान कर दिया।

अभी सन् १९५३ म आपको कलकत्ता म भव्य अभिनन्दन दिया गया और एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भी भेंट किया गया। आप हिन्दी के

वर्तमान साहित्य में सूर्य के समान देदीप्यमान हैं। आपका प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—निरूपमा, प्रभावती, काले कारनामें (२ भाग), चोटी की पकड़, अलका, अप्सरा, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार, सखी, लिली, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, रवीन्द्र कविता कानन, चाबुक, प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा, भारत में विवेकानन्द, परिव्राजक, रामकृष्ण कथामृत (४ भागों में), तुलसीकृत रामायण की टीका, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, अपरा, आराधना, बेला, नए पत्ते, अर्चना, पंत और पल्लव, अणिमा, कुकुरमुत्ता, विनय खण्ड, देवी, गीतगुंज, रस अलंकार, वात्सायन कामसूत्र, वैदिक साहित्य, ध्रुव, भीष्म, राणा प्रताप, हिन्दी बँगला शिक्षा आदि; (अप्रकाशित)——समाज, शकुन्तला, ऊषा अनिरुद्ध, चमेली, राजयोग, फुलवारी लीला, सरकार की आँखें, गीत गोविंददास की बँगलाकृति का अनुवाद। इसके अतिरिक्त बँगला के ११ उपन्यास हिन्दी में अनुदित किये। आजकल फिर एक काव्य संग्रह तैयार कर रहे हैं। निवास-स्थान——कला मंदिर, दारागंज, इलाहाबाद।

भेंट

प्रश्न—आपकी सबसे पहली कविता कौन-सी है ?

उत्तर—वह तो याद नहीं। मैं 'जुही की कली' को ही मानता हूँ। इस कविता की जितनी उपेक्षा हुई, बाद में उतना ही इसे आदर मिला। यही सबसे पहली और सबसे बढ़िया कविता है। इसी के बाद मैंने कुछ लिखा है।

प्रश्न—पाश्चात्य साहित्यकारों में आप का प्रिय कौन है ?

उत्तर—(इसे निराला जी की अपनी बोली बैसवाड़ी में दिया जा रहा है) शेक्सपियर और मिल्टन की जौन चीज मिलै पढ़ लेओ। इनके तई लिखे वाले कम ही हुइ हैं। कीट्स और शेली भी लिखिन हैं मगर मनन करै लायक कमै है। वर्ड्सवर्थ अँगरेजी केर छायावादी कवि रहा। अब आज के अँगरेज का लिखत हैं; पत्ता नाहीं। हम तो बहुत दिनन से नया साहित्य देयखा नहीं। उइसे अँगरेजी की बातै का है दुनिया केर सब साहित्य येहिमा है। यहिका तो हमहूँ समृद्ध बनावा है। सरोजनी, शिव आधार पाण्डेय, मुलुकराज और अमरनाथ झा अपनै आदमी तो हैं। हाँ, कल्पना केर उड़ान जौन संस्कृत मा मिली ऊ कहूँ नहीं। हम तो अँगरेजों से कहते थे मेघदूत पढ़ौ मेघदूत।

प्रश्न—आज-कल के हिंदी के कवियों में गीत किसके अच्छे हैं ? एकआध गद्य-लेखक का नाम भी बताएँ ?

उत्तर—गद्य हिन्दी में अभी लिखा ही कहाँ गया है। कहानी, उपन्यास और नाटक से कहीं गद्य बनता है ? गद्य उच्च कोटि के निबंधों से बनता है। शिवपूजन सहाय, रामचन्द्र शुक्ल, किशोरीदास बाजपेयी, हजारी

प्रसाद द्विवेदी और बख्शी जी ने कुछ लिखा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की बात जाने दो। रामबिलास शर्मा और माचवे भी अच्छा लिख लेते हैं। गीतों में शिवमंगल सिंह सुमन, जानकीवल्लभ शास्त्री और दिनकर अच्छे लिखने वाले हैं। कविता रामकुमार ने भी अच्छी लिखी हैं। महादेवी जी हिन्दी की माइल-स्टोन हैं। इधर तो शायद कुछ लिखा है या नहीं, मुझे पता नहीं चला। सुमित्रा सिनहा और कोकिल भी अच्छा लिखती हैं। सुमित्रा के यहाँ तो मैं रहा हू।

प्रश्न—'प्रसाद' जी का साथ तो आपका हुआ होगा? कुछ उन दिनों की बातें बताएँ।

उत्तर—वे बातें अब कहाँ धरी हैं! हम दोनों तो बनारस में जब भाँग छान के गंगा किनारे बैठते थे तो खूब ही कविताएँ सुनाई जाती थीं। कभी-कभी तो वहीं नई कविता जन्म ले लेती थी और तब हम एक दूसरे की कोई भी चिंता न करके अपने कक्ष में लेखनी चलाने लगते थे। एक बात है। जयशंकर के यहाँ गुलाबजल की शीशियाँ बहुत-सी थीं, उनको उनकी बिक्री करने की फुरसत तो थी नहीं, लिहाजा हमलोग अपने पैर के तलवों में उनकी मालिश किया करते थे। बढ़िया बादाम रोगन सर में मला जाता था और दिन-दिन भर बिना किसी काम के हमलोग मसनद टेक कर पड़े रह जाते थे।

प्रश्न—हिंदी की जो सेवाएँ आपन की हैं उसके बदले में आप कैसी सेवाएँ चाहते हैं?

उत्तर—हिन्दी वालों पर मैंने कोई एहसान नहीं किया है, और न मैं उसके बदले व्यवहार में कुछ चाहता हूँ। हिन्दी हमारी थी और उसके लिए जो कुछ हमसे बन पड़ा हमने किया। गाँधीजी जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति थे और उर्दू के प्रभाव में पड़कर हिन्दुस्तानी की बात करते थे तो मैंने उनसे ५ मिनट का इंटरव्यू लेकर २० मिनट तक

उन्हें झकझोरा था। उन्होंने बात-ही-बात में जब यह आक्षेप किया कि हिन्दी में कोई रवींद्र नहीं है तो मैंने कहा था—मैं हूँ। मुझसे सुनिए। अभी सुना सकता हूँ। हाँ, हिन्दुस्तानी में आपको कौन से रवींद्र दिखाई दे रहे हैं, मै नहीं कह सकता। गाँधीजी चिढ़ गए थे, वे बोले आपने बहुत समय अनावश्यक ले लिया और मैंने चलते हुए कहा था—हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होगी याद रखना।

प्रश्न—आपने बँगला में भी कुछ लिखा है ?

उत्तर—कभी कुछ कविताएँ लिखी थीं। लेकिन रवि बाबू ने तो इतना लिख दिया है कि कुछ दिन तक बंगला में लिखने की कोई जरूरत नहीं। रवींद्र को पाने वाला अभी २०० साल तक नहीं आ सकता। उनसे जो बचा सो डी० एल० राय, तारा शंकर, बंकिम और शरत् ने लिख मारा है। हिन्दी में प्रेमचन्द 'शरत्' से कम नहीं है। वैसे जहूर बख्श, कौशिक और सुदर्शन भी इन लोगों के समकक्ष आते हैं। दो-चार स्केच मेरे भी तगड़े हैं। हम जो बँगला में लिखते तो किसी बंगाली से कम न लिखते। मछली और भात की खवाई हमने भी कम नहीं की है। हम तो बँगाली लड़कों को शुद्ध बँगला बोलना सिखाते थे। मनोहरा देवी (निराला जी की स्वर्गीय पत्नी) ने तुलसीदास की रामायण सुनाकर हमको हिन्दी का आदमी बना दिया।

प्रश्न—आजकल आप मुक्त काव्य क्यों नहीं लिखते ?

उत्तर—हम लिखते ही कहाँ हैं। हमने तो अखाड़ा ही छोड़ दिया। आजकल बहुत लोग मुक्त काव्य लिख रहे हैं। यह नवजवानों का जमाना है, वे लिखें, हमने रास्ता बता दिया कि ऐसे भी लिखा जा सकता है। अब तो मन बहलाने के लिए कभी-कभी दो-एक गीत लिख लेता हूँ। मुक्त काव्य भावों का स्रोत चाहता है जो अब इस रोगी शरीर में नहीं पलता। अब तुम लोग लिखो। तुम्हारे पास बसंत है, यहाँ तो पतझड़ हो रहा है।

प्रश्न—अपनी प्रिय पुस्तकों के नाम बता सकें तो अच्छा हो।

उत्तर--मैंने तो बहुत दिनों मे पुस्तकें नहीं पढ़ीं। ये जो मेरे पास शिवगोपाल और पाण्डेय (गंगा प्रसाद) जी की दी हुई पुस्तकें रखी हैं इन्हीं को कभी-कभी पढ़ता हूँ। पहले जो पुस्तकें पढ़ी थीं उनके बहुत से नाम भूल गया हूँ। कुछ नाम ये हैं--रामायण, महाभारत, गीतांजलि, आँसू, कामायनी, कवितावली, कुमारसंभव, शकुंतला, गालिब का कलाम, बीरबल विनोद, पल्लव, कपाल-कुंडला, कृष्णकांत का वसीयतनामा, चन्द्र-कांता, चित्रलेखा, उमर खैयाम, भारत-भारती, बिस्मिल और फिराक की शायरी, हिमकिरीटनी, माधवी। कार्लमार्क्स, गेटे, टॉलस्टाय की प्रमुख कृतियाँ और शेक्सपियर, मिल्टन और रोम्यारोलाँ का सम्पूर्ण साहित्य।

प्रश्न—भोजन और अन्य खाने-पीने की चीज़ों में आपको क्या पसंद है?

उत्तर--खाने में बहुत-सी चीजें है। तुम तो गोश्त का मजा जानते हो, नम्बर एक चीज है। बासमती चावल का पुलाव बढ़िया होता है। टमाटर और प्याज का सलाद साथ ही दो मूलियाँ हो तो फिर क्या कहना। गुच्छी की तरकारी कभी-कभी गोश्त को भी मात कर देती है, मगर सबसे बन नहीं सकती। मैं अपने हाथ से बहुत बढ़िया बनाता हूँ। पंजाब की तरफ ये चीजें बहुत मिलती हैं। आम के दिनों में लखनऊ का दसहरी और बनारस का लंगड़ा खाने लायक फल है। वैसे चार आदमी मिल कर जो भी खा लें वही भोजन सबसे अच्छा।

प्रश्न--**आपके जीवन का दर्शन क्या है?**

उत्तर--रामकृष्ण व विवेकानन्द कथामृत पढ़ो।

प्रश्न--**पंडित जी, आपकी रुचि राजनीति में भी कुछ है?**

उत्तर--तुम तो पागल हो, कलामंदिर में जवाहरलाल नहीं रहते।

संसार में ३० करोड़ ईसा, मोहम्मद, बुद्ध वा राम जन्म लें तो भी तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता, जब तक तुम स्वयं अपने अज्ञान को दूर करने के लिए तत्पर नहीं होते। अपने उद्धार के लिए दूसरे का मुँह मत तको।

—स्वामी रामकृष्ण

पं० सुमित्रानन्दन पंत

पं० सुमित्रानन्दन पंत

परिचय

आपका जन्म अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक ग्राम में १४ मई १६०० ई० में हुआ। आपके पिता टी० टी० स्टेट के मैनेजर थे। आपके परिवार में शिक्षा को विशेष स्थान प्राप्त था, फलतः आपने अपने छोटेपन से ही अँग्रेजी, सस्कृत, बंगला, उर्दू और क्षेत्रीय भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया। नवीं कक्षा तक आपने अल्मोड़ा में पढ़ा, फिर हाई स्कूल बनारस में आकर किया। इन्टरमीडियट प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ा, किन्तु फिर आप अपने स्वअध्ययन में ही लीन हुये। कुछ वर्ष तक मासिक 'रूपाभि' का संपादन किया। आपका अध्ययन गाँधी दर्शन, मार्क्स दर्शन, बौद्ध दर्शन और अरविंद दर्शन आदि का गहन है। आपकी कविताओं में उपर्युक्त सभी दर्शनों की छाप एक-एक काल में मिलती है। आपके नवीनतम संग्रह 'अतिमा' में अरविंद दर्शन प्रत्यक्ष प्रतिलक्षित है। आपने उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद भी सुन्दर छन्दों में प्रस्तुत किया है। आपके साहित्य और व्यक्तित्व पर अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। वस्तुतः आपकी साहित्यिक सेवाओं की चर्चा करना सूर्य में प्रकाश दिखाने के समान है।

अबतक का प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है--उच्छ्वास, पल्लवनी, वीणा, गुंजन, पल्लव, ग्रंथि, युगवाणी, युगांत, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, मधु ज्वाल, रजतशिखर क्रीड़ा, रानी, परी, ज्योत्स्ना, उत्तरा, खादी के फूल (बच्चन जी के साथ), आधुनिक कवि, गद्यपथ, पाँच कहानियाँ

आदि । छायावादी कवियों में आपका प्रमुख स्थान है। आपको उत्तर प्रदेश सरकार से कई पुरस्कार भी मिल चुके हैं । आजकल आल इण्डिया रेडियो के हिन्दी विभाग के सलाहकारिणी समिति के सदस्य है। इधर आपने अनेक काव्य रूपक भी लिखे जो रेडियो से प्रसारित हुये और लोकप्रिय भी हुये । आपने अब तेलगु भाषा भी सीख ली है। आजकल टैगोर टाउन, प्रयाग में रह रहे ह ।

भेंट

प्रश्न--कृपया अपने बाल्यकाल के जीवन पर कुछ प्रकाश डालें और अपने परिवार का परिचय दें।

उत्तर--मैंने अपने विषय में आप ही जैसे कुछ व्यक्तियों की प्रेरणा से 'गद्य-पथ' में पर्याप्त लिख दिया है, यह पुस्तक साहित्य भवन लि० से प्रकाशित हुई है। संक्षेप में कहूँ तो, बाल्यकाल सभी का एकसा होता है। बढ़ने पर ही व्यक्ति-वैचित्र्य आता है। मैं बचपन से ही बड़ा संकोची व्यक्ति रहा हूँ। कारण नहीं कह सकता। माता जी मेरे पैदा होने के ६ घंटे बाद मर गई थीं। पिता जी सन् १९२८ में ७५ वर्ष की अवस्था में मरे। मेरे गाँव का नाम कौसानी है जो पहाड़ी और आकार में छोटा है। कभी-कभी अब भी वहाँ जाता हूँ। गाँव में चाय के बगीचे थे। खेत न थे। पिता वहीं व्यापार करते थे। वे टी० टी० स्टेट के मैनेजर थे। मुख्य व्यापार टिम्बर (लकड़ी) का होता था। अल्मोड़े के इस पहाड़ी भाग में प्रकृति की पूर्ण छटा प्राप्य है। मुझे तो वह स्विट्जरलैंड ही लगता है। हम चार भाई और चार बहन थे। तीसरे (मंझले) भाई की मृत्यु सन् १९२७ में टाइफाइड से हुई। इनका नाम रघुबरदत्त पंत था। अम्बादत्त जी पंत डिप्लोमेसी के लेक्चरर हैं। बहिनें सभी मर गईं। हरदत्त जी पन्त हैं। पं० देवीदत्त जी पन्त एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० पी० थे (इनका निधन १९ अप्रैल १९५५ को मोटर दुर्घटना से हो गया)। सन् १९१८ के जुलाई मास में मैं प्रयाग आया। उन दिनों बापू के असहयोग आन्दोलन की धूम थी। मैंने भी बापू के आदेश से पढ़ना छोड़ दिया। पं० देवीदत्त जी पढ़ते ही रहे। वे उस समय बी० ए० में थे। मैं म्योर सेन्ट्रल कालिज में पढ़ता था और हिन्दू होस्टल में रहता था।

अपने और परिवार पर और अधिक प्रकाश डालने की शायद आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—आपकी पहली कविता कौन थी ? कविता करने की प्ररणा आपको कहाँ से प्राप्त हुई और प्रोत्साहन देने वाला व्यक्ति कौन था ? यदि कोई साहित्यिक गुरु हो तो उसका नाम बतावें ?

उत्तर—वीणा में पहली कविता प्रकाशित हुई—"इस विस्तृत होस्टल में मेरा है यह छोटा सा रूप।" जब मैं ग्यारह वर्ष का था तभी से कविता करने की प्रेरणा भाई हरदत्त जी पन्त से मिली। उस समय तक वे बी० ए० पास कर चुके थे, संस्कृत का उनका अच्छा अध्ययन था। आंग्ल भाषा के भी प्रकाण्ड अध्येता थे। उन्हें संस्कृत में सोने का पदक मिला था। हिन्दी से उन्हें बड़ा अनुराग था। वे भाभी को हिन्दी सिखाते थे, साथ ही राजा लक्ष्मणसिंह के अनुवाद को सस्वर सुनाते थे। मैं भी सुना करता था, कुछ आनन्द भी लेता था। भइया कविता पहाड़ी बोली में भी लिखते थे। मेरी पढ़ाई अलमोड़े से शुरू हुई। मैं बचपन से ही दुबला-पतला था। जब मैं १२ साल का हुआ तो अपनी भाषा से प्रेम करने लगा, किन्तु उन्हीं दिनों स्वामी सत्यदेव अलमोड़े आए, उन्होंने हिन्दी-प्रेम का डंका पीटा। वे गाते भी थे और कविता भी गाकर ही पढ़ते थे। उन्होंने वहाँ एक पुस्तकालय तथा शुद्ध साहित्य समिति की स्थापना की जो आज तक है। मेरा पढ़ने से स्वाभाविक प्रेम था। १४ वर्ष की आयु तक मैंने जयद्रथ वध, भारत-भारती, छत्रसाल, बहता हुआ फूल आदि पढ़ डाले थे। सबसे पहले मैंने 'कविता रोला' नामक पुस्तक हरगीतिका छन्द में लिखी। बचपन में मेरे अध्यापक कहते थे कि यदि मैं फेल होऊँगा तो हिन्दी में, किन्तु मुझे हिन्दी में 'डिस्टिंक्शन' मिला। वैसे मैं साइन्स का छात्र था, किन्तु घर में संस्कृत पढ़ता था। बिहारी प्रभृति रीतिकालीन कवियों पर टीकाएँ पढ़ने का अवसर भी मिला। किताबें मैं नन्दन लायब्रेरी से मँगाता था। इसके बाद मैं बनारस पढ़ने गया। यहाँ

रह कर मैंने टैगोर तथा श्रीमती सरोजनी नायडू का साहित्य पढ़ा। उस समय तक मैं 'प्रसाद' जी के नाम से परिचित नहीं था। हाँ, प्रेमचन्द को जानता था। शिक्षा जयनारायण हाई स्कूल में मिली। इसी बीच हिन्दू विश्वविद्यालय में एक प्रतियोगिता हुई। मुझे मदन मोहन मालवीय पुरस्कार मिला था, विषय था 'हिन्दू विश्वविद्यालय'। कुछ समय के लिये देहरादून भी जाना पड़ा, किन्तु फिर १९२९ में प्रयाग आया। प्रयाग में पं० शिवाधार जी पाण्डेय का कृपापात्र बना। मैं पाण्डेय जी के यहाँ अंग्रेजी, संस्कृत आदि की पढ़ाई करने नित्य जाने लगा। साढ़े तीन साल तक यह क्रम चलता रहा। नाश्ता तक उनके यहाँ ही करता था। उनसे मुझे अध्ययन करने का प्रोत्साहन और बल बहुत मिला। श्री वियोगी हरि के कहने पर सबसे पहले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंच पर गया और मैंने एक कविता 'बादल' पढ़ी। इस कविता के सुनाने के बाद ही सरस्वती में मेरी 'पल्लव' की कृतियाँ प्रकाशित हुईं।

प्रश्न—प्रगतिशील साहित्य के नाम पर जो कुछ लिखा जा रहा है उसके महत्त्व को आप कहाँ तक मानते हैं ?

उत्तर—मेरी और निराला जी की बहुत सी रचनाएँ इसमें आती हैं। इस धारा का संचरण तो इस समय विश्वव्यापी है। महत्त्व तो इसका अवश्य है। प्रगतिशील का विलोम है प्रयोगवादी मार्क्सवाद। अच्छे कवि इसमें कम ही हैं, हो सकता है कभी कोई बड़ी प्रतिभा इस प्रयोगवाद में आ जावे। इस समय प्रगतिशील साहित्य का महत्त्व तो है ही, आगे सम्भव है स्थिति बदले।

प्रश्न—आधुनिक प्रचलित वादों में मानव-जीवनकल्याण के दृष्टि-कोण से साम्यवाद, समाजवाद, गाँधीवाद, पूँजीवाद और गणतन्त्र-वाद अपना क्या महत्त्व रखते हैं ? आपको सबसे अधिक तथ्य किसमें मिलता है ?

उत्तर—आज एक महान् परिवर्तन आ रहा है, बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार से। अनेक वादों का जन्म और संघर्ष इसीलिये होने लगा है। सांस्कृतिक लोककल्याण की दृष्टि से साम्यवाद ठीक है, किन्तु साधन देश की अपनी परिस्थितियों पर निर्भर है। भारत में तो असमानता पर्याप्त रूप से है। यहाँ आर्थिक सन्तुलन की अत्यन्त आवश्यकता है। विश्व में अपार सम्पत्ति है, उसका यदि सम वितरण हो जाये तो युद्ध समाप्त हो जायें। साम्यवाद समाजवाद वास्तव में एक हैं। गाँधीवाद कुछ भिन्न है। अपने देश की मर्यादा के आधार पर क्रान्ति संयमित रूप से होनी चाहिये। मैं साम्यवाद और गाँधीवाद के समन्वय को उचित समझता हूँ। हमारा लक्ष्य यदि साम्यवाद है तो मार्ग गाँधीवाद का होना चाहिये। कल्याण इसी में है।

प्रश्न—मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के अन्य कवियों का भी साहित्य आपने सम्भवतः देखा होगा। कृपया बतावें किनकी रचनाएँ अधिक रुचिकर लगीं तथा दोनों काल में क्या विशेष अन्तर रहा ?

उत्तर—मध्यकालीन रचनाएँ खूब पढ़ी हैं। बिहारी उतने अच्छे नहीं लगे जितनी उनकी चर्चा थी। नरोत्तमदास का सुदामाचरित्र व भानुकवि की पुस्तक में मध्यकालीन कवियों का संकलन अति पसन्द आया। आधुनिक कवियों में निराला जी की अनामिका बहुत पसन्द है। महादेवी वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र व माखनलाल चतुर्वेदी की रचनायें भी मुझे प्रिय हैं। मैथिलीशरण जी की रचनाओं की चर्चा शुरू में ही कर चुका हूँ। रूपाभि पत्रिका का प्रकाशन १९३८ में शुरू किया। १९३९ में युद्ध छिड़ते ही वह बन्द हो गई। दिनकर की फुटकर रचनाएँ उसमें प्रकाशित हुईं। रामकुमार का नाटक-संग्रह दीपदान मुझे अच्छा लगा है। विद्यावती 'कोकिल' की सुहागिन सुन्दर रचना है। अज्ञेय का हरी घास पर कुछ क्षण अत्यन्त सुन्दर कृति है। निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' मुझे

बहुत प्रभावित कर सकी । कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिनहा भी उल्लेखनीय हैं ।

[पन्त जी ने मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य के अन्तर की चर्चा नहीं की]

प्रश्न—'कला कला के लिये है' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत है ?

उत्तर—कला कृति है, कलाकार कर्ता है । इस प्रकार कलाकार कृति से ऊपर हुआ । कला जीवन के लिये है । पहले जीवन है, फिर कला है, इसलिये कला जीवनोपयोगी होनी चाहिये, लोक-भावना को उन्नत करने के लिये होनी चाहिये । सारांशत: कला जीवन के लिये प्रथम और कला के लिये बाद में है । कला कला के लिये तभी उचित है जब समाज पूर्णत: सम्पन्न हो ।

प्रश्न—आप अपने जीवन में कौन-कौन सी आकांक्षाएँ लेकर चले और उनमें कहाँ तक सफलता मिली ? कृपया यह भी बतावें कि आपने कौमार्य जीवन क्यों व्यतीत किया ? आपकी कविता 'ग्राम युवती' पढ़ने से आभास मिलता है कि नारी के रूप से आपको पूर्ण आकर्षण मिला, किन्तु फिर भी आप नारी के सम्पर्क की ओर से उदास रहे । ऐसा क्यों ?

उत्तर—सच पूछिये तो आपको भी अपनी इच्छाएँ याद न होंगी । कितनी आकांक्षाएँ और इच्छाएँ मनुष्य के जीवन-काल में आती और जाती रहती हैं । एक भावुक कल्पनाशील व्यक्ति के लिए यह याद रखना तो और भी सम्भव नहीं । मैं प्राप्त तो कुछ भी नहीं कर सका, किन्तु अपने कारण से जिसमें हमारे देश व समाज का हित हो, वही मेरा प्राप्य होगा । अपने साहित्य से भी मैं अब तक सन्तुष्ट नहीं हो पाया क्योंकि इच्छा तो कुछ और भी अधिक लिखने की थी, परिस्थितियों ने उतना करने नहीं दिया । बड़ी विषमताएँ जीवन में रही हैं, फिर भी हमने या हमारी पीढ़ी ने साहित्य को कुछ न कुछ दिया ही है । निराला जी ही को लीजिये,

उन्होंने तो साहित्य को बहुत रूप से पूरा करने की चेष्टा की। हमारे समय के साहित्य का स्तर आज से कहीं ऊँचा है, यही संतोष का विषय है। सम्भव है आगे कुछ लिख पाऊँ। सर्विस में आकर अधिक कुछ करना कठिन हो जाता है, किन्तु सभी कुछ आदमी के हाथ में नहीं होता। मैं समझता हूँ सर्विस करके मैंने कोई गुनाह नहीं किया। आपने विवाह के विषय में पूछा है सो मैं कहता हूँ कि शादी न करके भी मैंने कोई गुनाह नहीं किया। निराला जी ने शादी की, पत्नी मर गई। उन्हें उसके अभाव में कुछ खोना पड़ा। शादी न करके मैंने कुछ खोया नहीं, मुझे उसके अभाव की अपेक्षा भी नहीं। यौवनकाल में अपनी रचनायें बराबर प्रकाशित हो रही थीं। लिखने में ही मस्त रहा। अपना ध्यान उधर कम ही रहा, स्वास्थ्य भी एक कारण है। 'ग्राम युवती' की चर्चा जो आपने की है तो प्रकृति के सौन्दर्य से कोई भी मुख नहीं मोड़ सकता। मैं इतना बता दूँ कि 'वोमन हेटर' नहीं हूँ। एक बात और है, तब आज का जैसा वातावरण भी नहीं था। हम लोग अपने बड़ों के सामने युवतियों की चर्चा भी नहीं कर सकते थे; विवाह की स्वइच्छा प्रगट करना तो दूर रहा। मेरे समय में युवतियों को खुले विचरण करने की छूट भी नहीं थी। ऐसी ही कुछ स्थिति म दिन बीतते गये और अब तो प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न—कृपया बतावें पाप और पुण्य क्या हैं? कर्म का विश्लेषण करते हुये प्रकाश डालें तो अच्छा है।

उत्तर—पाप-पुण्य दोनों सामाजिक इकाइयाँ हैं। एक ही काम एक स्थान पर पाप है तो दूसरी जगह पुण्य। समाज के काँटे पर इसे तौला जा सकता है। दोनों सापेक्ष काल के आधीन भावना है। ये नितान्त सामाजिक व्यापार हैं। आत्महित के आगे समाजहित पर इसका व्यापक प्रभाव है। पाप और पुण्य बँटे हुये कर्म नहीं हैं। ये तो कार्य करने के स्थान पर अपने सम्बोधन को पाते हैं। बात साफ है, अधिक विश्लेषण देने की आवश्यकता नहीं समझता।

प्रश्न—आधुनिक जिन कवयित्रियों के काव्य से आप प्रभावित हों उनके नाम बतावें। आप नाम क्रमबद्ध भी कीजिये, यथासम्भव कृतियों के अनुसार।

उत्तर—आधुनिक कवयित्रियों ने जो कुछ लिखा है सब तो मेरे सम्मुख नहीं आया, फिर भी जो पढ़ सका हूँ उसके अनुसार नाम यों है—महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, विद्यावती 'कोकिल', तारा पाण्डेय, सुमित्रा कुमारी सिनहा, विद्यावती मिश्र तथा शान्ति एम० ए०। कवयित्रियों का क्रम बाँधना अनधिकार चेष्टा है। मैं आलोचक होता तो यह अधिक अच्छी तरह से कर सकता, इसलिये जो नाम मैंने लिये हैं वे यदि क्रम में न समझे जायँ तो अच्छा है। मैं महादेवी के काव्य की चर्चा फिर अवश्य कर दूँ; उनकी रचना में प्रकृति बोल रही है। वास्तव में उनकी कविता में तूलिका का भी आनन्द मिलता है।

प्रश्न—कह नहीं सकता आपको पता है अथवा नहीं, आपके केश हिन्दी के नवजवान प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण के बिन्दु रहे हैं। यदि कुछ अनुचित न समझें तो बताएँ आपने अपने बालों का रूप कहाँ से ग्रहण किया?

उत्तर – छोटी सी बात है, मुझे नेपोलियन बोनापार्ट के एक बड़े चित्र में उसके बाल कुछ इसी प्रकार से दिखाई दिये। मुझे बहुत अच्छे लगे। मैंने भी वैसे ही बाल रखने शुरू किये। तभी से ये चले आ रहे हैं।

प्रश्न—एक स्थान पर आपने लिखा है—"कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तो अपने को भी नारी के रूप में अंकित किया है।" कृपया इसे स्पष्ट करें। यह क्यों हुआ?

उत्तर—जहाँ प्रकृति को मेरे भीतर से बोलना पड़ा वहाँ ऐसा ही होना पड़ा। प्रकृति स्त्रीलिंग है और मैं उसका एक अंश हूँ। अपने विचार से रहस्यवाद में मैं उतना पारङ्गत नही हो पाया, जितना प्रकृति-चित्रण

में । प्रकृति के चित्रों को मैंने यथावत् प्रस्तुत करने की चेष्टा की और उस समय मुझे प्रकृति का माध्यम बनकर स्त्रीवाचक बोलना पड़ा ।

प्रश्न—आप अपने विचार से अपनी सर्वोत्तम कृति बताइये । कविताओं और पद्यनाटक में जिसकी चर्चा अधिक रही उसका भी नाम लें ।

उत्तर—मैं अपनी कोई कृति सर्वोत्तम नहीं मानता । 'पल्लव' कुछ अधिक लोगों को पसंद है, वह कल्पना-प्रधान है । कुछ पाठकों ने 'गुंजन' को उत्तम माना है । 'ग्राम्या' को लोग प्रगतिशील कहते हैं, शेष 'मोनोटोनस' से सम्बोधित हुई हैं । मैं स्वयं से अपनी रचनाओं पर कुछ कहना ठीक नहीं समझता, यह तो पाठकों का काम है । कहानी पांच लिखी है । 'पानवाला' एक स्केच है । उसकी चर्चा भी अच्छी रही है । पद्यनाटक रेडियो के निमित्त 'शिल्पी' और 'फूलों का देश' लिखा है । इन रचनाओं की चर्चा कभी-कभी सुनाई पड़ जाती है ।

प्रश्न—आपके ऊपर समालोचकों की कृपा रही है । सबसे सुन्दर आलोचना किसने की ? अपने कटुतम आलोचक का नाम भी बतावें ।

उत्तर—जैसा मैंने सुना है, डा० नगेन्द्र ने अच्छी आलोचना लिखी है । डा० रामरतन भटनागर भी उल्लेखनीय हैं । आलोचक को अपने विचार प्रगट करने का पूरा अधिकार है, इस कारण मुझे किसी की भी आलोचना नापसन्द नहीं । मेरे कटुतम आलोचक डा० रामबिलास शर्मा रहे हैं । मैंने उन्हें भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया । हाँ, उत्तरा की भूमिका में कुछ जिक्र अवश्य किया है ।

प्रश्न—आल इण्डिया रेडियो के अधिकारी के रूप में हिन्दी को जो सेवायें और नयी सूझ आपने दी हैं कृपया उनका विवरण दीजिये ।

उत्तर—प्रश्न टेढ़ा है । मैं रेडियो में जो कुछ भी करता हूँ, अपने बहुत से सहयोगियों की सहायता से ही कर पाता हूँ, इसलिये इसका श्रेय अपने को दूँ, ठीक नहीं । सरकारी नौकर हूँ, इस नाते इस सम्बन्ध में

अधिक कहना उचित नहीं समझता । हाँ, इससे अलग होने पर कुछ अधिक बता सका तो अवश्य बताऊँगा ।

प्रश्न—अपने जीवन को कोई मधुर घटना सुनाइये ।

उत्तर—मुझे टैगोर के प्रथम दर्शन से बढ़कर कोई घटना मधुर नहीं लगी । जब मैं बनारस में पढ़ता था तो वे थियोसिफिकल कालिज में आए थे । उनका व्यक्तित्व अनोखा था । लम्बा कद, काली ऊँची टोपी, लम्बी श्वेत दाढ़ी । मेरे लिये यह अपूर्व दृश्य था ।

कला की साधना विलास नहीं है और न स्वप्न-लोक में विचरण करना। अपने उच्चतम रूप में कला की साधना में हमारा व्यक्तित्व उन्नतिशील आत्मानुभूति की ओर अग्रसर होता रहता है।

नन्दलाल बसु

नाट्यकार एवं कवि डा० रामकुमार वर्मा
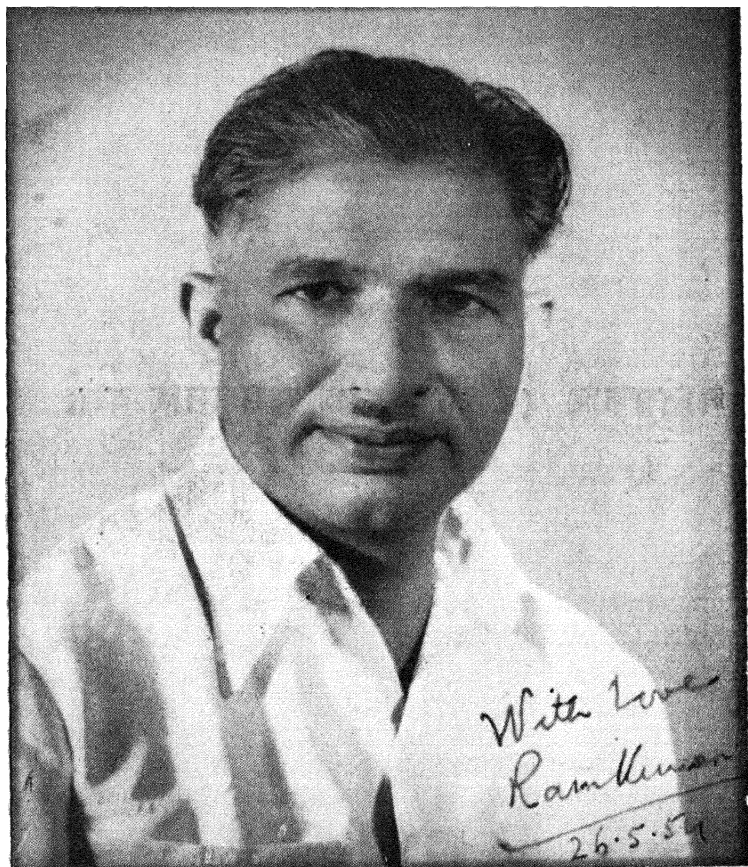
नाट्यकार एवं कवि डा० रामकुमार वर्मा

परिचय

आपका जन्म १५ सितम्बर १९०५ में सागर (मध्य प्रदेश) में हुआ। आपके पिता साहित्य से अच्छी रुचि रखने वाले थे। आपका साहित्य-सृजन का क्रम 'सुखद सम्मिलन' नामक कहानी से प्रारम्भ हुआ जो आपके आज के साहित्य में विस्मृत-सी हो गई है। आपको अपने छात्र-काल में 'देश-प्रेम' नामक रचना पर ५१) रु० का 'खन्ना पुरस्कार' मिला था। प्राथमिक शिक्षा नागपुर में मराठी मे प्रारम्भ हुई, किन्तु फिर नरसिंहपुर में आपने हिन्दी लेकर हाई स्कूल तक पढ़ा। आपने हिन्दी में एम० ए० प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में किया। 'हिन्दी साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास' पर नागपुर विश्वविद्यालय से आपको पी-एच० डी० की उपाधि मिली। आप हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और संस्कृत भाषाओं पर अच्छा अधिकार रखते हैं। हिन्दी के नाट्यकारों में आपका विशिष्ट स्थान है। आपने हिन्दी में शोध के कार्य को बहुत आगे बढ़ाया है और कुछ महत्त्वपूर्ण अप्राप्य ग्रन्थों को खोज निकाला है। 'मृगावती' की खोज (एकडला गाँव में जिला फतेहपुर) आपने की और तुलसीदास की नई कृति 'छन्दावली' की हस्त-लिखित प्रतिलिपि चित्रकूट-यात्रा में आपको मिली। आप कुछ समय के लिए मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा-संचालक भी रह चुके हैं। भारत सरकार में आप शिक्षा-मंत्रालय तथा सूचना तथा प्रसार मंत्रालय की परामर्शदात्री समितियों के सदस्य रहे हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय की अनेक संस्थाओं के निर्माण में डा० वर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्वविद्यालय नाट्य-परिषद् और हिन्दी परिषद् का संचालन आप अनेक वर्षों से कर रहे हैं। बहुत दिनों तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के

परीक्षामंत्री भी रहे हैं। भारतीय हिन्दी परिषद् के प्रधान मंत्री का पद कई वर्षों तक संभालने के उपरान्त आजकल वे उसके उपसभापति हैं। आपकी लगभग चालीस पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ के नाम इस प्रकार हैं––हिमहास, चित्तौड़ की चिता, अभिशाप, निशीथ, चित्ररेखा, चंद्रकिरण, वीर हम्मीर, अंजलि, रूपराशि, आकाशगंगा, साहित्य समालोचन, कबीर का रहस्यवाद, संत कबीर, साहित्यशास्त्र, पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, दीप-दान, शिवाजी ध्रुवस्वामिनी, जौहर, रिमझिम, सत्य का स्वप्न, रूप-रंग, रजत-रश्मि, ऋतुराज, चारुमित्रा, विजय पर्व, चार ऐतिहासिक नाटक, इन्द्र धनुष, कला और कृपाण, पाञ्चजन्य। आपको चित्ररेखा पर २१००) रु० का 'देवपुरस्कार', रिमझिम पर ४००) रु० का, चन्द्रकिरण पर ५००) रु० का 'चक्रधर पुरस्कार' और रजत-रश्मि व ऋतुराज पर ५००) रु० का उत्तर प्रदेश सरकार का पुरस्कार मिल चुका है। आपकी नवीनतम और महत्त्वपूर्ण रचना 'एकलव्य' महाकाव्य है। आप प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर हैं।

भेंट

प्रश्न—क्या आपको याद है कि साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा आपको कब से और कैसे मिली ? आपको साहित्यिक क्षेत्र में लानेवाला अथवा प्रोत्साहित करनेवाला व्यक्ति कौन था ?

उत्तर—साहित्य-सेवा हमारे वंश की परम्परागत सम्पत्ति है। मेरे प्रपितामह छत्रसालजी यों तो वैद्य थे, किन्तु साथ ही उन्हें प्राचीन ग्रंथों से बड़ा अनुराग था और उन्होंने उन दिनों प्राचीन कवियों के सुन्दर ग्रंथों की एक हस्तलिपि तैयार की जिसमें जयदेव का 'गीतगोविन्द', 'कवितावली' 'बिहारी सतसई' मुख्य हैं। उन्होंने ब्रजभाषा की स्फुट रचनाएँ भी कीं। वह गदर की कहानी भी बड़े मार्मिक ढंग से बताते थे। उन्हें भारतेन्दुजी के साहित्य से प्रेम था। मेरे पिता को कविता से तो प्रेम था, परन्तु वह रचयिता न थे। माता राजरानी देवी कुशल संगीतज्ञ थीं। वह कविताएँ भी लिख लेती थीं। उनकी दो-चार रचनाएँ प्रकाशित भी हुई थीं। स्पष्ट यह है कि मेरे ऊपर मेरी माता से सुने गीतों का आज तक प्रभाव है क्योंकि वह कबीर, सूर, तुलसी के पद गाती ही रहती थीं।

इसके अतिरिक्त मेरे गुरु श्री विश्वम्भर प्रसाद गौतम 'विशारद' ने मुझे सन् १६१७ से काव्य-साधना की ओर प्रेरित किया। पहले-पहल मेरी रचनाएँ उन्होंने ही 'विद्यार्थी' पत्र में प्रकाशित कराई। मैं यहाँ पर कुछ और बता दूँ तो आपको मेरी प्रगति का एक कारण और विदित हो जाएगा। उन्हीं दिनों गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन चल रहा था। श्री शौकतअली के कहने पर मैंने भी स्कूल त्याग दिया था, यद्यपि मैं प्रथम श्रेणी के छात्रों में से था। मुझे सरकारी वृत्ति दी जाती थी, पिता डिप्टी कलक्टर थे, अतः बहुत ही बिगड़े। एक बार घर छोड़ने की

नौबत भी आई। उन्हीं दिनों मैंने 'सुखद सम्मिलन' नाम की कहानी रची, जिसका प्रभाव मेरे पिता पर भी पड़ा। मैं असहयोग आन्दोलन के दिनों में प्रभातफेरियों के लिए नित नई कविताएँ रचने लगा। आन्दोलन बन्द हो जाने के बाद भी मैं स्कूल नहीं गया, परन्तु मेरी माता ने जिस प्रकार मुझे समझाया वह इतना प्रभावपूर्ण था कि मैं तुरन्त स्कूल जाने लगा। इन्हीं दिनों मुझे कानपुर से खन्ना पुरस्कार देश-प्रेम की रचना में मिला। इससे मेरा हौसला काफी बढ़ा। यह हिन्दी के चार ही कवियों को मिला था। प्रथम पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, द्वितीय श्री चंडीप्रसाद हृदयेश, तृतीय शाह लखनवी और चौथा मैं स्वयं था। प्रत्येक को ५१) मिले थे।

प्रश्न—आप अपने को नाट्यकार, निबंधकार, कवि और आलोचक इनमें से किस रूप में सबसे अधिक सफल पाते हैं ?

उत्तर—यों तो आत्मा को सन्तोष कविता लिखने से ही होता है, क्योंकि कवि ने ही नाटककार बनाया। काव्यगत दृष्टिकोण ने ही नाटक की सूझ दी, या यों कहा जाए कि कविता यदि एक लता है तो नाटक उसमें खिले फूल हैं। लता से अधिक महत्त्व फूल को दिया ही जाता है। मेरे नाटकों को वैसा ही महत्त्व प्राप्त हुआ। अध्यापक होने के नाते मुझमें आलोचना के भी तन्तु आए। इस प्रकार मैं अपने को पहले कवि और फिर नाट्यकार के रूप में सफल मानता हूँ। विश्वविद्यालय के क्षेत्र में आने के कारण मुझे आलोचक भी बनना पड़ा और मैं समझता हूँ कि उसमें भी मुझे कम सफलता एवं सम्मान नहीं मिला।

प्रश्न—आपके कितने ग्रंथ अब तक प्रकाशित हुए हैं ? सबसे अधिक संस्करण किस पुस्तक का हुआ है ? आपकी सबसे कम और अधिक मूल्य की पुस्तकें कौन हैं ?

उत्तर—ग्रंथों की संख्या लगभग ३० (अब चालीस) हैं, जिनमें प्रमुख सात काव्य-संग्रह, नौ नाटक-संग्रह, पाँच आलोचना-ग्रंथ, एक गद्य-काव्य एवं दो निबंन्ध-संग्रह हैं। मेरे कुल नाटक ८५ की संख्या में हैं। काव्य में अधिक संस्करण 'चित्ररेखा' के हुए—सात संस्करण। नाटक में 'चारु मित्रा' के १२ संस्करण। आलोचना में 'कबीर का रहस्यवाद' के १३ संस्करण। अन्य सभी ग्रंथों के तीन से ज्यादा संस्करण हो चुके हैं। अधिक-से-अधिक मूल्य की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' मूल्य १०) है। कम-से-कम मूल्य की पुस्तक 'ध्रुव-तारिका' मूल्य १) है।

प्रश्न—आपने ऐतिहासिक नाटक पर्याप्त लिखे हैं, इनके लिखने का आपका मुख्य मन्तव्य क्या है ?

उत्तर--प्रगति और आधुनिकता की गति में आकर हम अपने अतीत के स्वर्ण पृष्ठों को न भूल जायँ जो हमारे पूर्वजों की धरोहर और हमारी निधि है।

प्रश्न--हिन्दी के चित्रपटों के विषय में आप अपनी कैसी धारणा रखते हैं ? क्या कारण है कि बँगला के उत्कृष्ट कथा-साहित्य को तो चित्रपटों में प्रस्तुत करने का प्रयास बराबर किया जाता है, किन्तु हिन्दी के अच्छे-से-अच्छे उपन्यास भी स्क्रीन पर नहीं लाए जाते ? आप अपने कुछ नाटकों के लिए बम्बई के फिल्म-निर्माताओं द्वारा बुलाए भी गए थे।

उत्तर--हिन्दी या हिन्दुस्तानी चित्रों के निर्माता अधिकतर या तो अहिन्दी हैं या हिन्दी साहित्य से अछूते हैं। इन चित्रपटों की कथा लिखने वाले साहित्यकार नहीं, वे या तो 'मुन्शी जी' हैं या 'पंडित जी'। चित्रपट-निर्माताओं के लिये साहित्यकार 'फिजूल की चीज' है। एक साहित्यकार से जब निर्माता पूछता है—

कि आपकी कहानी 'हंटरवाली' टाइप की है या नहीं ?

कि आपकी कहानी में 'परेम' की 'उथल-पुथल' के गाने १०,१५ तक रखे जा सकते हैं या नहीं ?

कि कहानी में 'मजा' पैदा करने वाली 'चुलबुलाहट' है या नहीं ?

कि कहानी में हमारा पैसा तो न फँसेगा ?

कि सस्ते-से-सस्ते कितने दामों में कहानी निकल सकती है ?

कि कहानी मर्जी के माफ़िक हम बदलेंगे यह शर्त मंजूर है ?

कि इस कहानी की हीरोइन क्या ऐसी है जो हमारे 'स्टूडियो की 'स्टार' से 'फिट' हो जाय—

तो फिर लेखक को चुप ही हो जाना पड़ता है। हिन्दी के साहित्यकार एसी ओछी चीजें न लिखेंगे और न अभी कुछ दिन उनकी कृतियाँ पर्दे पर आएँगी।

हिन्दुस्तानी चित्रों का निर्माता यह प्रयोग कभी नहीं करेगा कि वह ऐसा चित्र बनाए जिससे भारतीय कथा-साहित्य द्वारा हमारी संस्कृति का प्रभाव सारे संसार में फैल जाय। साधारणतः दिलचस्प चित्रपटों में क्या होगा—

१—दृष्टि पड़ते ही प्रेम हो जाना।

२—विरह में एक ही गीत गाना। नायक यदि गाने की एक कड़ी रेल के कम्पार्टमेन्ट से सिर निकाल कर गा रहा है, तो गायिका उसी गाने की दूसरी कड़ी बैलों को भूसा डालते हुए गा रही है।

३—नाचने वालियों से प्रेम।

४—पाकेट काटना या चोरी करना, जालसाजी करना।

५—पिस्तौल या बन्दूक से खून करना।

६—मोटर से कुचल जाना।

७—अर्धनग्न नायिका का तालाब में स्नान करना।

८—अस्पताल और आपरेशन टेबुल।

९—जज का इजलास और 'माई लार्ड' कहते हुये वकीलों की जिरह और मुजरिम से सवाल-जबाब।

१०—मौत का दृश्य।
११—पागल हो जाना या स्मृति खो जाना।
१२—महफिल के नाच और शराब के दौर।

अधिकांश चित्रपटों में यही बातें है। वास्तविक समस्याओं को वास्तविक रूप मे सुलझाने की सहज और मनोवैज्ञानिक विधि सौ चित्रपटों में से दस चित्रपटों में भी मिलनी मुश्किल है। इससे स्पष्ट है कि चित्रपट-निर्माण में नब्बे प्रतिशत राष्ट्रीय धन राष्ट्र के अस्वस्थ मनोविनोद तथा कुत्सित संस्कारों के उत्पन्न करने में व्यय होता है।

बॅगला चित्रों के निर्माता अपनी भाषा, संस्कृति और साहित्य के अधिक निकट होते हैं। वे साहित्य के अध्ययन करने वाले हैं और वे साहित्य की सात्विकता के आनन्द को जानते हैं। फलतः बॅगाली निर्माता अपने साहित्यकारों को बराबर आदर देने का प्रयास करते हैं। हिन्दी के क्षेत्र से भी जब तक कुछ अच्छे साहित्यकार चित्र-निर्माण-क्षेत्र में नहीं पहुँचते तब तक हिन्दुस्तानी या हिन्दी फिल्मों का कल्याण होना मुश्किल है।

प्रश्न—साहित्य-क्षेत्र में प्रायः गुटबाजी चलती है। क्या आप भी इसकी चपेट में आए हैं? यदि हाँ, तो किस दशा में? आपके विचार से इसके दूर करने का क्या उपाय है?

उत्तर—शतरंज में शह और मात दो बातें होती हैं। मुझे शह तो सौ बार लगी, परन्तु मात एक बार भी नहीं खाई। मैं साहित्य को तपोवन मानता हूँ। उसकी साधना में स्वार्थ और अहंकार का नाम नहीं होना चाहिए। मैं साहित्य को दूसरे के कन्धे पर नहीं चलाना चाहता। गुट बनाकर अपनी तारीफ करने को मैं अपनी प्रतिभा की मृत्यु समझता हूँ। जिस वस्तु में जान है वह आप ही अपना प्रमाण देगी। दूसरों के कन्धों पर तो शव चलता है, साहित्यकार नहीं।

प्रश्न--भारत में प्रचलित विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की लिपि देवनागरी होना राष्ट्र को कहाँ तक हितकर हो सकता है ? क्या प्रादेशिक भाषाओं को लिपि-परिवर्तन से कोई हानि भी सम्भव है ?

उत्तर--द्रविड़ लिपियों को छोड़कर आर्य लिपियाँ एकमातृ-जन्मा है। देवनागरी संस्कृत साहित्ययुक्त है। मराठी-सदृश अन्य प्रान्तीय भाषाएँ भी देवनागरी लिपि अपनाएँ तो उन भाषाओं का काम सरलता से चल सकता है। ऐसा होने पर प्रान्तीय साहित्य और देश दोनों ही अधिक संगठित होंगे। इससे प्रान्तीय भाषाओं को कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है, किन्तु इसके लिए हिन्दी प्रान्तों को जोर देने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न--हिन्दी साहित्य की गति पाश्चात्य साहित्य के समकालीन चल रही है अथवा कुछ आगे-पीछे ? अँग्रेजी साहित्य की प्रवृत्तियाँ और हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ कहाँ-कहाँ बिलकुल मेल नहीं खातीं ?

उत्तर--दो साहित्य और दो दृष्टिकोण के सम्पर्क में आने का कारण था साम्राज्यवाद। परन्तु अब स्वतंत्रता के बाद वह सब अतीत की बात ज्ञात होती है। प्रगतिवादी साहित्य के नाम से प्रकाशित होने वाला साहित्य अवश्य आधुनिक पाश्चात्य साहित्य से मेल खाता है, किन्तु हमारे साहित्य ने कभी अनुकरण नहीं किया, वह तो अनुकरणीय रहा है और है। हमारे यहाँ का साहित्य 'स्व' को 'पर' के हेतु मानता है और विदेशी साहित्य में 'पर' को 'स्व' की परिधि में लाया गया है। हमारा और उनका सामाजिक जीवन भी भिन्न है, अतः साहित्य, जो समाज का प्रतिबिम्ब है, अवश्य ही बहुत अर्थों में भिन्न हो जाता है। संक्षेप में हमारा दृष्टिकोण समष्टि है और उनका व्यष्टि।

प्रश्न--आजकल हिन्दी साहित्य का सृजन सम्पूर्ण भारतवर्ष में हजारों पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हो रहा है और यह भी

सत्य है कि एक व्यक्ति इतना सब पढ़ भी नहीं सकता। मेरे विचार से ऐसी अवस्था में अलग-अलग व्यक्ति जो साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास लिखते हैं, वह एकांगी हो सकता है।

उत्तर—यह प्रश्न जरा उलझा हुआ-सा है। मेरे विचार से यदि आलोचक परिश्रम करके निष्पक्ष रूप से यह कार्य करे तो समालोचना के एकांगी होने की सम्भावना नहीं रहती। यों तो फिर यह कार्य ही विकट है। भूल-चूक हो सकती है। लेकिन हाँ, अखाड़ेबाजी के कारण जानबूझकर किसी को नगण्य कर देना या किसी विशेष लेखक की रचनाओं को प्राप्त करके भी उसकी ओर से उदासीन होना आलोचक के लिए अच्छा नहीं है। समालोचनात्मक साहित्य के लिए गहन अध्ययन और उचित टिप्पणियाँ तैयार करते हुए इतमिनान से पूर्ण समय देकर कार्य किया जाने पर एकांगी होने की सम्भावना नही है। हाँ, एक बात और मैं यहाँ कहना चाहता हूँ कि साहित्यकार की वास्तविक परख उसके आगे वाले युग में हो पाती है, क्योंकि जीवनकाल में प्रायः यह देखा गया है कि आलोचक लेखक के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अथवा उससे किसी कारण रुष्ट होकर उसके वास्तविक दृष्टिकोण को कहीं-से-कहीं ले जाता है। कविवर मैथिली-शरण गुप्त की विकृत आलोचना और महादेवी वर्मा की कवीन्द्र रवीन्द्र से तुलना ऐसे ही कुछ कारणों से हो गई है।

प्रश्न—विश्व-विद्यालयों के छात्र तथा छात्राओं को कला-पक्ष में (Art Side) **एक ही स्तर और श्रेणी की शिक्षा देना भारतीय समाज के लिए आप लाभकर समझते हैं अथवा नहीं ? यदि नहीं, तो क्या अन्तर होना चाहिए ?**

उत्तर—मैं ऐसी शिक्षा लाभकर नहीं समझता, क्योंकि इस यंत्र के युग में शिक्षा भी जीवन को यांत्रिक बनाने की ओर लगी है। उसने नर-नारी के विभिन्न रूप का ध्यान ही न रखा। रेल के पहियों के चलने के

लिये दो पटरियाँ होती हैं । यदि चारो पहिये खिसक कर एक ही पटरी पर चलने का प्रयास करेंगे तो निश्चय ही गाड़ी उलट जायगी । इस समय समाज एक क्रान्ति की ओर बढ़ रहा है जो चिर संघर्ष और चिर अशान्ति का प्रतिरूप है । वस्तुत: नारी का क्षेत्र, कार्य और दायित्व पुरुष से भिन्न है । इस शिक्षा से दो हानियाँ विशेष हैं—

(१) अधिकारों की माँग और कर्त्तव्यों की भूल ।

(२) सहानुभूति का नाश ।

निश्चय ही शिक्षा की प्रणाली कुछ बदलनी चाहिये ।

प्रश्न—ललित कलाओं में आपके विचार से मानव-समाज को सबसे शीघ्र कौन-सी कला प्रभावित करती है और किस कला में मानव-उत्कर्ष का सार सर्वोपरि है ?

उत्तर—यों तो विश्व में अनेक कलाएँ हैं और जिसको भी मांजा जाय, उसमें निखार आ सकता है । किन्तु तीन कलाएँ मुख्य मानता हूँ—

१—काव्य कला,

२—संगीत कला और

३—चित्रकला

काव्य को इसलिये सर्वोपरि मानता हूँ कि उसके अन्तर्गत संगीत और चित्र दोनों ही निहित हैं । जो काव्य सफल है, वह संगीतमय अवश्य है और जिस काव्य में कल्पना है, उसमें चित्र अवश्य है ।

मानव-उत्कर्ष का सर्वोपरि सार तीनों कलाओं में अपने-अपने स्थान पर चरम सीमा पर है । सभ्यता ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है, यह कलाएँ उसका माप बताती जाती हैं। ललित कलाओं के द्वारा ही मानव में अध्यात्म आया । यह कलाएँ ही किसी जाति अथवा व्यक्ति की साधना और लगन का प्रतिरूप बनती हैं । काव्य मनुष्य का अन्तर्नाद है और

आत्मा की वाणी सदैव सत्यं-शिवं-सुन्दरं की पूजक होती है, इसलिये मैं इसमें मानव-उत्कर्ष का सर्वोपरि सारनिहित मानता हूँ।

प्रश्न--विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी और साहित्य-सेवा में कौन किसका बाधक सिद्ध हुआ ? क्या दोनों साथ-साथ ले चलने में आपको कोई कठिनाई प्रतीत हुई ?

उत्तर—कोई कठिनाई नहीं हुई। यदि कोरा साहित्यकार होता तो भावनाओं और परिस्थितियों का शिकार बनता, जैसा कि महाकवि निराला का हाल हुआ, परन्तु शिक्षा-क्षेत्र में होने के कारण नाजुक-मिजाजी और कवियों की अहम्भावना मुझमें न आ पाई। यदि विश्वविद्यालय में न होता तो जीवन का संतुलन खो बैठता। अहम् की इति न होती। अतः मुझे तो सहायता ही मिली, कठिनाई नहीं हुई। साहित्य में अधिक घुसकर उसे देखने का अवसर मिला और मैं ठोस तथा परिपक्व सामग्री दे सका हूँ, ऐसा मेरा अनुमान है।

प्रश्न--आप अपने प्रकाशकों पर कुछ प्रकाश डालें। नाम न ले सकें तो भी उनकी ओर से खट्टे-मीठे अनुभव बताने का कष्ट करें। पहली पुस्तक के प्रकाशन का इतिहास भी बताएँ।

उत्तर—जीवन के बीमे और प्रकाशन दोनों मेरी विनोद-वृत्ति पर आधारित हुए हैं। जिसने आग्रह किया 'पालिसी' ले ली, जिसने माँगा प्रकाशन दे दिया। मित्रों की संख्या अधिक है। इसलिए इन दोनों की संख्या भी अधिक हुई। अब तक आठ कम्पनियों में बीमा है और १२ स्थानों से प्रकाशन हुआ है। ऐसे कार्य से मेरी हानि ही हुई है, क्योंकि ग्वालियर से लेकर पटने तक और लाहौर से लेकर नागपुर तक के विस्तृत क्षेत्र में फैला मेरा प्रकाशन मेरी आँखों से दूर होने के कारण वास्तविक लाभ नहीं दे पाता। अधिकतर प्रकाशक लाभान्वित हो रहे हैं, क्योंकि मेरी बीस के लगभग पुस्तकें विभिन्न राज्यों के पाठ्यक्रमों में लगी हैं। बहुतों

ने वर्षों से 'रायलटी' नहीं दी। इस मामले में पंजाब के प्रकाशक आगे हैं। मैंने अभी तक मुकदमे की बात जुबानी ही रखी है। मुझे अपनी प्रथम कृति का अब ढूँढ़ने से भी पता नहीं लगता। वह थी 'वीर हम्मीर' जो मैंने इंटर में पढ़ते समय लिखी थी। पहली कृति प्रकाशित होने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। रचनाकाल सन् १९२२ था।

आज एक संकल्प करने की आवश्यकता है कि हम राष्ट्रीय तेज का हनन न होने दें। कोई भी देश उत्थान के पथ पर अग्रसर हो सकता है, यदि उस देश का जन-समाज अपनी शक्ति में भरोसा रखे, अपने भविष्य में विश्वास रखे और अपने इस संकल्प पर दृढ़ रहे कि हम अपनी दुर्बलताओं और समस्याओं पर सारी कठिनाइयों के रहते हुए भी विजय प्राप्त करके ही चैन लेंगे। आज प्रत्येक देशभक्त का एकमात्र कर्त्तव्य यह है कि वह सैकड़ों वर्षों के दमन से मुक्त हुई भारतीय चेतना में यह विश्वास और भरोसा तथा आस्था उत्पन्न करने की चेष्टा करे जो राष्ट्र के सामूहिक बल और प्रयासों में व्यक्त होता है। हम शताब्दियों तक निराशा और अकर्म में पड़े रहे हैं। हमें न अपने भविष्य में विश्वास था और न अपने जीवन में रस मिलता था। आज जन-समाज को उस निराशा और निष्क्रियता के गढ़े से बाहर निकालना है।

—कमलापति त्रिपाठी

आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
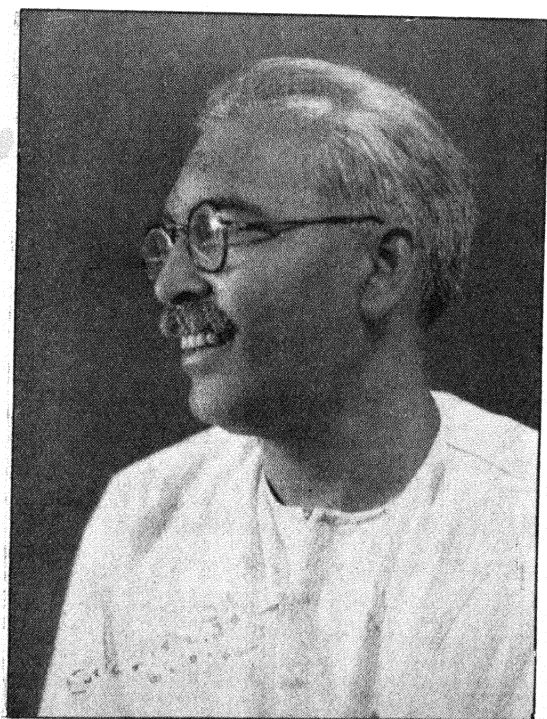
आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

परिचय

आपका जन्म बलिया में हुआ। जीवन-सम्बन्धी अधिक जानकारी द्विवेदी जी के शब्दों में ही पढे।

आप शान्ति निकेतन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। आप ओरियंटल कांफ्रेस (दरभंगा) के सभापति, साहित्य-परिषद्-सम्मेलन अधिवेशन (करांची) के मुख्य अतिथि और उत्तर प्रदेशीय नव संस्कृति संघ (वाराणसी) के सभापति रह हैं। लगभग सभी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की सम्मितियों से सम्बन्धित हैं। आपको लखनऊ विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि मिली। 'सूर साहित्य' नामक ग्रंथ पर मध्य भारतीय हिन्दी परिषद् की ओर से पुरस्कृत हुए। 'कबीर' ग्रंथ पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया।

आपका अब तक प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—रवीन्द्र ग्रंथावली, मालवीय जी का जीवनवृत्त, कबीरपथी साहित्य, दो बहनें, अशोक के फूल, पुरातन, प्रबन्ध-संग्रह, प्राचीन भारत का कला-विलास, कबीर, सूर साहित्य, बाणभट्ट की आत्मकथा, हिन्दी साहित्य की भूमिका, विचार और वितर्क, साहित्य का साथी, हमारी साहित्यिक समस्याएँ, सूरदास की कविता, प्रबन्ध चिन्तामणि, नख दर्पण में हिन्दी कविता, नाथ समुदाय, चारुचंद्रलेख, इत्यादि अनेकानेक ग्रन्थ।

आजकल आप काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

भेंट

प्रश्न--कृपया अपना पारिवारिक परिचय दें और अपने किशोर-कालीन गतिविधि से अभिज्ञ करावें। साहित्य की ओर विशेष प्रवृत्ति जागृत कराने वाला यदि कोई व्यक्ति हो तो उसका भी परिचय दें।

उत्तर--मेरा मूल निवास-स्थान बलिया जिले के आरद दुबे का छपरा है। आरद दुबे मेरे (बाबा के बाबा) वृद्धत-प्रपितामह का नाम है। वे ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। यह गाँव उन्हें उनकी योग्यता पर उस समय के राज्य के द्वारा प्रदान किया गया था और उन्हीं के नाम से गाँव का नाम आरद दुबे का छपरा पड़ा। उनके बाद हमारे परिवार में पढ़ने-लिखने से अधिक रुचि रखने वाला कोई न हुआ, फलतः उत्तराधिकारियो के पास जो कुछ भी सम्पत्ति थी उसे वे बेच-बेच कर खाते गये। मेरे जन्मकाल तक मेरे घर में पर्याप्त दरिद्रता आ चुकी थी, फिर भी संस्कृत के प्रति थोड़ी बहुत रुचि हमारे परिवार के व्यक्तियों में बाकी रह आई थी और इसी रुचि के आधार पर मेरी शिक्षा संस्कृत से प्रारम्भ हुई। मेरे पिता श्रीयुत पण्डित अनमोल दुबे ने मुझे अच्छी शिक्षा देने का प्रयास किया, साथ ही मुझमें भी कुछ स्वाभाविक ज्ञानपिपासा होने के कारण मेरी पढ़ाई का क्रम अच्छा बँधा। गाँव के पास ही बसरियापुर मिडिल स्कूल से मिडिल पास किया और फिर १९२१ में काशी में संस्कृत पढ़ने आया। ज्योतिष अपने घर की पैतृक सम्पत्ति मानी जाने के कारण मुझे अनिवार्य रूप में पढ़नी पड़ी। मुझे ज्योतिष अधिक प्रिय न थी, फिर भी ज्योतिष में मैंने

आचार्य की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। मैं गणित-ज्योतिष में निश्चय ही आनन्द लेता था, किन्तु फलित-ज्योतिष में मुझे विश्वास नहीं रहा। ज्योतिष के साथ-साथ संस्कृत तो पढता था ही, अँग्रेजी पढ़ने का शौक भी मुझे अपने आप हुआ। १६२३ में विश्वविद्यालय में पढ़ना प्रारंभ किया। साहित्य की ओर मेरी रुचि मेरे एक मित्र शुक्ल जी के साथ से जागृत हुई। वे प्रायः सामयिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ते थे और कभी-कभी कुछ लिखते भी थे। उनके साथ में रहते हुये साहित्य का आनन्द कुछ-कुछ मुझे मिला। इन्हीं दिनों मैथिलीशरण गुप्त की कवितायें सरस्वती में प्रकाशित हुई जो मुझे अच्छी लगीं और जब सुमित्रानन्दन जी का पल्लव मैंने देखा तो मुझे साहित्य से विशेष अनुराग हुआ। लिखने की रुचि जागृत करने में बनारसीदास जी चतुर्वेदी मेरे प्रमुख व्यक्तियों में से एक हैं। आप उन दिनों विशाल भारत का सम्पादन कर रहे थे, आपकी प्रेरणा ने मेरी लेखनी को बहुत बल दिया। मुझे शान्ति निकेतन ले जाने का श्रेय सुश्री आशा देवी जी को है। आप उन दिनों काशी विश्वविद्यालय के वीमेन्स कालिज में प्रोफेसर थीं और आजकल (१९५६) वर्ल्ड टीचर्स कांफ़्रस की उप-अध्यक्षा हैं। शान्ति निकेतन पहुँच कर मैं गुरुदेव टैगोर के सम्पर्क में आया और मुझे उनसे भी बहुत कुछ प्राप्त हुआ। शोध के कार्य की ओर मुड़ने की प्रवृत्ति आचार्य क्षितिमोहन सेन और महा-महोपाध्याय पं० विधुशेषर शास्त्री ने उत्पन्न की। शास्त्री जी का मेरे उत्थान में बहुत बड़ा हाथ है। प्रसिद्ध चित्रकार नन्दलाल बसु ने मुझे लिखते रहने के लिये बराबर प्रोत्साहन दिया और उनसे प्रायः मेरा विचार-विमर्श होता रहता था।

हाँ, एक बात मैं अपने सम्बन्ध में आपको बताना भल गया था, वह भी बता देना अब आपको आवश्यक समझता हूँ। मेरे नाम के अर्थ के सम्बन्ध में प्रायः लोगों ने मुझसे पूछा है और मैं टाल गया हूँ। मेरा वास्तविक नाम बैद्यनाथ दुबे था, किन्तु जब मैं छोटा ही था तो मेरी

ननिहाल की एक सम्पत्ति के पीछे एक मुकदमा मेरे घर वालों को लड़ना पड़ा और जिसमें जीत होने पर १०००) की राशि मेरे परिवार के हाथ लगी। इस एक हजार रुपये की याद रखने के लिये मेरा नाम बैद्यनाथ से हजारी प्रसाद हो गया।

प्रश्न—भारत में शिक्षा का प्रचलन जिस रूप से हो रहा है क्या आप उससे संतुष्ट हैं? गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिन आदर्शों, सिद्धान्तों और पद्धति को अपनाकर शान्ति-निकेतन की स्थापना की, क्या वह अन्य विश्वविद्यालयों की शिक्षा-पद्धति से अधिक उपयोगी है? यदि हाँ, तो इस प्रकार के अन्य विश्वविद्यालयों की माँग उच्चतम शिक्षक-वर्ग से क्यों नहीं हुई?

उत्तर—गुरुदेव के शान्ति निकेतन की स्थापना का मूल सिद्धान्त आश्रमीय वातावरण और गुरु शिक्षा-प्रणाली रहा। गुरु ही सब कुछ है, इसको ही आधार बना कर उन्होंने अपनी पद्धति रखी थी। उनके विचार से शिक्षा-संस्थाओं में साधारणतया जो नियम व अधिनियम प्रचलित रहते हैं और हैं उनका कोई मूल्य नही। गुरु की आज्ञा ही सब कुछ है। वह जब जैसा भी उचित समझेगा, करेगा। नियम व्यक्ति के पीछे चल सकता है, व्यक्ति को नियम के पीछे चलने की आवश्यकता नही। आज के सभी विश्वविद्यालय और स्कूल व कालिज नियम को पहले बनाते हैं और उसके पीछे अपना सारा काम करते हैं, किन्तु आश्रमो में गुरु की आज्ञा ही सबसे बड़ा नियम होता है, प्रधान गुरु है और कुछ भी नहीं, कोई वस्तु नहीं। हमारे शिक्षा-केन्द्रों में परीक्षायें पास करने के लिये बहुत से कानून और कायदे हैं; जैसे, उपस्थिति की प्रतिशत संख्या, समय का बन्धन, विद्यालय के अपने कुछ विशिष्ट नियम, प्राप्त अंकों की गणना का आधार आदि। आश्रम की शिक्षा और परीक्षा में ऐसा कोई भी बन्धन नहीं होता। गुरु जब कभी उचित समझता है तो २ घन्टे लगातार पढ़ाता है और कभी २० मिनट ही दीक्षा देकर उस दिन का कार्य समाप्त कर

देता है। यह आवश्यक नहीं कि ४० मिनट के घण्टे अवश्य ही पूरे किये जायें। यही सिद्धान्त परीक्षा में भी लागू किया जाता है। गुरु यदि समझेगा कि शिष्य अमुक पद के योग्य है, तो फिर उसे कोई भी अन्य नियम देखने की आवश्यकता नहीं। शिष्य उत्तीर्ण समझा जायगा। शान्ति निकेतन इसी सिद्धान्त पर स्थापित हुआ और गुरुदेव के काल तक उसका सारा कार्य इसी प्रकार से होता रहा। वहाँ गुरु ही मुख्य था। निश्चय ही गुरु यदि वास्तविक गुरु है, तो फिर अन्य वस्तु देखने व समझने की आवश्यकता ही क्या है ? मुझे यह प्रणाली पसंद थी, किन्तु उनके बाद शान्ति निकेतन का कार्य अधिक दिन तक उस प्रकार न चल सका। छात्र-छात्राओं की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी और धीरे-धीरे वहाँ भी नियम-अधिनियम बनने लगे। आजकल तो शान्ति निकेतन भी एक लगभग वैसा ही विश्वविद्यालय है जैसे की अन्य। आधुनिक विश्वविद्यालय में जिस रूप से शिक्षा दी जा रही है वह बुरी नहीं, मं इसे बुरा नहीं कह सकता, किन्तु फिर भी आजकल की शिक्षा नियमबद्ध है। एक मशीन की तरह इसमें काम होता है। इस शिक्षा में योग्यता की प्रधानता के साथ नियम और कानून अधिक महत्त्व पाते हैं। कोई छात्र कितना भी योग्य क्यों न हो, किन्तु वह परीक्षा में तब तक उत्तीर्ण या सफल नहीं माना जायगा जब तक कि विद्यालय के प्रचलित नियमों व अधिनियमों के अन्तर्गत वह पूर्ण नहीं उतरता। शिक्षकों का चुनाव और व्यवस्था का मार्जन रखा जाय तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली बुरी नहीं है और फिर ज्यों-ज्यों शिक्षा बढ़ती जाती है, शिक्षा-संस्थायें उसी अनुपात में नहीं बढ़ पा रही है, तो फिर उन्हें नियमबद्ध होकर तो चलना ही पड़ेगा। यही सुलभ मार्ग है, वैसे निजी तौर से मुझे आश्रम-प्रणाली प्रिय है। अच्छा होता कि शान्ति-निकेतन आश्रम प्रणाली से ही चलता रहता। यह प्रणाली भी एक आदर्श है।

प्रश्न—हिन्दी के संत-साहित्य का भविष्य, भौतिकवाद के बढ़ते

हुये युग में अपनी सत्ता को कहाँ तक स्थायी रख सकेगा ? कबीर, तुलसी, सूर, मीरां, दादू और नन्ददास के साहित्य में ईश्वरवाद के अतिरिक्त मोटे रूप से अन्य क्या सन्देश मानव-समाज को मिलता है ?

उत्तर--हिन्दी का संत-साहित्य सदा ही अपना महत्त्व रखेगा क्योंकि भौतिकवाद कितना भी बढ़े वह मानव के सात्विक गुणों की अवहेलना नहीं कर सकता। संत-कवियों की वाणी में मनुष्य को व्यक्ति के उन गुणों का दर्शन मिलता है जो सत्य है। संत-कवियों ने ईश्वरवाद को तो जो कुछ बढ़ाया, वह तो है ही, किन्तु मुख्य बात यह है कि इन लोगों ने जीवन के किस रूप को चुना है। जो सत्य है वही शिव है और वही सुन्दर है। आगे आने वाले दिनों में कोई ईश्वर पर या उनकी लीलाओं पर विश्वास करे या न करे, किन्तु त्याग, तप, सेवा की भावना वाले विचारों का आदर तो करेगा ही। संत-कवियों ने या यों कहिये कि कबीर और तुलसीदास ने जीवन का जो ऊँचा ध्येय और उसका दर्शन प्रस्तुत किया है, उससे तो कोई अलग नहीं भाग सकता। मैं समझता हूँ भौतिकवाद हिन्दी की इस साहित्यिक निधि को कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता।

प्रश्न—कबीर के रहस्यवाद और आधुनिक कवि प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के रहस्यवाद में क्या अन्तर है ?

उत्तर--कबीर और मीरां के रहस्यवाद में पारलौकिक चिन्तन अधिक मिलता है, जब कि आधुनिक रहस्यवाद में ऐहलौकिक चिन्तन ही मूल स्रोत है। आधुनिक रहस्यवादी कवियों में मैं पंत और निराला के रहस्यवाद को वास्तविक रहस्यवाद न मानकर रोमान्टिक रहस्यवाद मानता हूँ। इसके बाद आधुनिक रहस्यवाद के दो रूप हैं एक बुद्धिवृत्तिक और दूसरा भावुकता के साथ प्रत्यक्ष अनुभूतिमूलक। प्रथम में जय-शंकर प्रसाद की रचनायें और डा० रामकुमार वर्मा की कुछ कवितायें आती हैं। इनके काव्य को पढ़ने के बाद जब कुछ देर सोचा जाता है

तब उसका आनन्द मिलता है, द्वितीय में महादेवी वर्मा प्रधान रूप से आती है। इनके रहस्यमय काव्यों को पढ़ने से प्रत्यक्ष अनुभूति और साथ ही साथ आनन्द मिलता जाता है। प्रथम कोटि का रहस्यवाद चिन्तन-प्रधान है तो द्वितीय कोटि का रहस्यवाद भावना-प्रधान है।

प्रश्न—हिन्दी राष्ट्र-भाषा घोषित होने के बाद इसका प्रसार दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है और इसके साहित्य के सृजन का क्षेत्र भी पर्याप्त बढ़ा है। प्रतिवर्ष जितना नया साहित्य सम्पूर्ण देश में प्रकाशित होता है, उन सबका अध्ययन करना तो दूर रहा, अवलोकनमात्र भी एक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में हिन्दी साहित्य की गतिविधि को आँकना अथवा उसके वर्त्तमान रूप का विवेचन करना अथवा उसका इतिहास लिखना व्यक्तिगत लोगों के लिए कहाँ तक उचित है? मेरे विचार से अब तक जैसा होता आया है कि बहुत से अलग-अलग विद्वानों ने पृथक्-पृथक्, साहित्य का इतिहास लिखा है वैसा न होकर अब ४, ५ विद्वानों का यह सम्मिलित कार्य होना चाहिये। इसी सम्बन्ध में मैंने एक बात और देखी है कि प्रायः ऐसी पुस्तक प्रकाशित होती हैं जो बड़े महत्त्व की होती हैं और उच्च स्तर से लिखी गई होती है, किन्तु उनकी चर्चा भी कहीं नहीं हो पाती, इसी के विपरीत प्रायः ऐसा भी होता है कि आलोचक अथवा साहित्य के इतिहासकार के निकट सम्पर्क में रहने वाले लेखक की उस महत्त्वहीन पुस्तक की भी जोरों से चर्चा हो जाती है, जितनी अपेक्षित नहीं। आपके विचार इस सम्बन्ध में क्या हैं? क्या यह उचित हो सकता है कि आज भी एक व्यक्ति सम्पूर्ण देश के फैले साहित्य पर प्रकाश डाल सके?

उत्तर—मैं आपके विचारों से सहमत हूँ। जैसी की स्थिति अब पैदा हो गई है, उसके अनुसार एक व्यक्ति के लिये वास्तव में यह सम्भव नहीं रह गया है। मेरे विचार से सामूहिक कार्य करने के बजाय यदि क्षेत्र बाँध कर काम किया जाय तो और अच्छा है। अलग-अलग क्षेत्रों

को बाँट कर विभिन्न व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र के साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए विवेचनात्मक इतिहास लिखें और फिर उन सभी पुस्तकों को लेकर एक सम्मिलित इतिहास लिखा जाय तो वह निश्चय ही अधिक शुद्ध होगा ।

प्रश्न--आधुनिक राजनीति का प्रभाव देश के प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन पर प्रत्यक्ष पड़ता है । आपने अवश्य ही विभिन्न राजनैतिक दलों और उनकी शासकीय पद्धति व सिद्धान्तों पर कभी विचार किया होगा । गाँधीवाद, स्वतन्त्र-प्रजातन्त्र, समाजवादी-प्रजातन्त्र और साम्यवादी व्यवस्था में से किस सिद्धान्त से आप अधिक सहमत हैं ?

उत्तर--मैं गाँधीवाद पर विश्वास करता हूँ; साथ ही मशीन की उपयोगिता को भी महत्त्व देता हूँ । किन्तु मैं यह चाहता हूँ कि मशीन मनुष्य पर हावी न हो, बल्कि मनुष्य मशीन को अपना दास बनावे । दूसरे रूप से अर्थ यह हुआ कि मशीन के कारण श्रम की जो भी बचत होती है, उसका लाभ व्यक्ति-विशेष को न होकर श्रमिक को हो या जनसमुदाय को हो । मैं चर्खा भी त्यागना नही चाहता और मशीन का वहिष्कार भी करना ठीक नहीं समझता दोनों की ही आवश्यकता अपने-अपने स्थान पर है। मोटे रूप से कहूँ तो समाजवादी प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था मैं पसंद करता हूँ।

प्रश्न--भदन्त आनन्द कौशल्यायन, राहुल सांकृत्यायन और डा० के० एम० अशरफ ने यह विचार प्रगट किये है कि धर्म चूँकि व्यक्तिगत चीज है, इसलिये आगामी समय में भारत में ऐसे परिवार दिखाई देंगे जिनमें परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग धर्मों का उपासक हो सकता है; उदाहरणार्थ पिता हिन्दू हो, माता बौद्ध हो और उनकी सन्तान मुसलमान या ईसाई आदि हो । आप इस कल्पना से कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर--मैं समझता हूँ कि अभी २०० वर्ष तक तो भारत में ऐसा रूप देखने को नहीं मिलेगा । यों दो चार घर आज भी ऐसे हों तो इतनी

बड़ी जनसंख्या के बीच उनका कोई महत्त्व नहीं। धर्म, चाहे वह कोई भी हो, भारतीय परिवारों में इस बुरी तरह से अपना प्रभुत्व जमाये है कि उससे छुटकारा पाना जल्दी सम्भव नहीं। यह बात दूसरी है कि धर्म की आपसी घृणा की भावना दूर हो जाय जैसे कि आज सभी पढ़े-लिखे शिष्ट व्यक्ति, चाहे वे किसी भी धर्म के हों, निःसंकोच एक साथ बैठकर खा-पी लेते हैं, किन्तु यदि यह कहा जाय कि वे अपने परिवार से भिन्न हो रहे हैं तो यह कहना कठिन है। मेरा विश्वास ऐसे परिवारों के होने पर कम है।

प्रश्न--प्रगतिशील लेखक संघ और उसके कार्यकर्त्ताओं की विभिन्न सभाओं एवं गोष्ठियों की गतिविधि से सम्भवतः आप अभिज्ञ होंगे। उनका जो यह कहना है कि उनके साहित्य ने सबसे बड़ी सेवा जनता की की है और वे ही समस्त मानव-समाज के प्रतिनिधि लेखक हैं, इस वक्तव्य से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर—प्रगतिशील लेखक संघ को तो जानता हूँ, किन्तु उसके निकट बहुत कम रहा हूँ इसलिये उसकी गतिविधि से अधिक जानकार नहीं हूँ। मैं प्रगतिशील लेखकों को मान्यता देता हूँ, किन्तु प्रगतिवादियों को नहीं मानता क्योंकि वे चिल्ला-चिल्ला कर अपना लिखा सब पर लादना चाहते हैं। प्रगतिवादियों का अबतक ऐसा कोई भी साहित्य नहीं है जो स्थायी महत्त्व रखता हो। मैं प्रगतिशील लेखक और प्रगतिवादी में अन्तर मानता हूँ। लेखक के रूप में रामबिलास शर्मा, अमृतराय और उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे कुछ लेखक प्रगतिशील हैं, किन्तु इनके आगे-पीछे जो गिरोह है और जो प्रगतिवाद का एक मंच बना कर अपना प्रचार करते हैं, वह ठीक नहीं। साहित्यकारों का सामूहिक कार्य बहुत अर्थ में अच्छा होता है, किन्तु आपस के प्रचार का कार्य कभी भी उचित नहीं माना जा सकता।

(मैंने यहीं पर एक प्रश्न और किया)—भाषा और काव्य को जो

रूप प्रगतिशील नामधारी लेखक-वर्ग दे रहा है क्या वह उचित है ? ख्वाजा अहमद अब्बास और कृश्नचन्दर की भाषा के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—प्रगतिवाद में जो काव्य के अन्दर प्रयोगवाद चला है वह तो केवल प्रयोग ही प्रयोग है, उसका कोई रूप अभी निखर नहीं पाया है और भाषा के लिये तो मुझे यह कहना है कि इसका रूप किसी के बाँधने से नहीं बँधेगा। वह तो जनता जिस भाषा को आगे के वर्षों में अपनायेगी और उपयोग में लायेगी, वही भाषा का रूप होगा। लेखक को अपने लिखने से तात्पर्य रखना चाहिये, किसी पर उसे थोपने की लालसा करने की आवश्यकता ही नहीं है। ख्वाजा अहमद अब्बास और कृश्नचन्दर की किताबें मेरे पढ़ने में नहीं आई हैं, अतः उनके विषय में कहने में असमर्थ हूँ।

प्रश्न—साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही एक साथ होने के नाते भारत के नवयुवकों को आप वह कौन-सा सन्देश देना उचित समझेंगे जो उनके भावी जीवन में सफलता लाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो। आजकल लोग प्रायः यह कहते हैं कि आजकल के छात्रों में गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं होती, इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—लोगों का यह कहना कि आजकल के शिक्षकों के प्रति विद्यार्थियों की श्रद्धा नहीं होती, बिल्कुल गलत बात है। मेरा तो यह कहना है कि विद्यार्थी सदा ही गुरु के प्रति श्रद्धा रखता है और जिन शिक्षकों का यह कहना है कि उनके प्रति लड़के श्रद्धा नहीं रखते, उसके दोषी वे स्वयं हैं। उनमें अवश्य ही कोई कमी है। कम-से-कम विश्व-विद्यालय का विद्यार्थी बड़ा ही जागरूक होता है, वह कभी भी गुरु के ज्ञान की अवहेलना नहीं कर सकता। मैं नवयुवकों को कोई नया सन्देश नहीं देना चाहता, सुबह से शाम तक दीक्षा ही तो देता हूँ। भारतवर्ष में लाखों नवयुवक हैं और बेचारे सभी अपनी-अपनी परिस्थिति से जकड़े हैं। वे बहुत कुछ सोच-समझ कर भी बहुत से काम अपने लिए नहीं कर

पाते। ऐसी स्थिति में सभी को एक-सा आदेश या संदेश कैसे दूँ। मुख्य बात जो मुझे कहनी है वह यह कि वे अपने और अपने समाज के प्रति विश्वास के पात्र बनें, सत्य-पथ को अपनाएँ, संघर्ष से डरें नहीं और उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहें। चरित्र की उज्ज्वलता पर विश्वास रखें और अपनी बौद्धिक उन्नति सदैव करते रहें। हमारा देश स्वतन्त्र है और उसका भविष्य अब नवयुवकों के हाथ में है।

जहाँ मन भयग्रसित नहीं है, जहाँ मनुष्य शीश उठाए हुए हैं, जहाँ ज्ञान स्वतन्त्र है, जहाँ संसार घरेलू दीवारों के कारण छोटे-छोटे भागों में नहीं बँटा है, जहाँ आत्मविचार हृदय की गहराई से उत्पन्न होते हैं, जहाँ सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के लिए पुरुषार्थ बाहु फैलाए रहता है, जहाँ बुद्धि का स्वच्छ नदी का मार्ग मृतवत् स्वभाव के बियाबान में लोप नहीं हो जाता, जहाँ मन तेरी आधीनता स्वीकार कर विस्तृत होने वाले विचार और कर्म के मैदानों में पहुँचता है, ऐ पिता ! स्वतन्त्रता के उस उच्चतर शिखर पर मेरा देश पहुँचे ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

संत-कवि एवं साहित्यकार प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
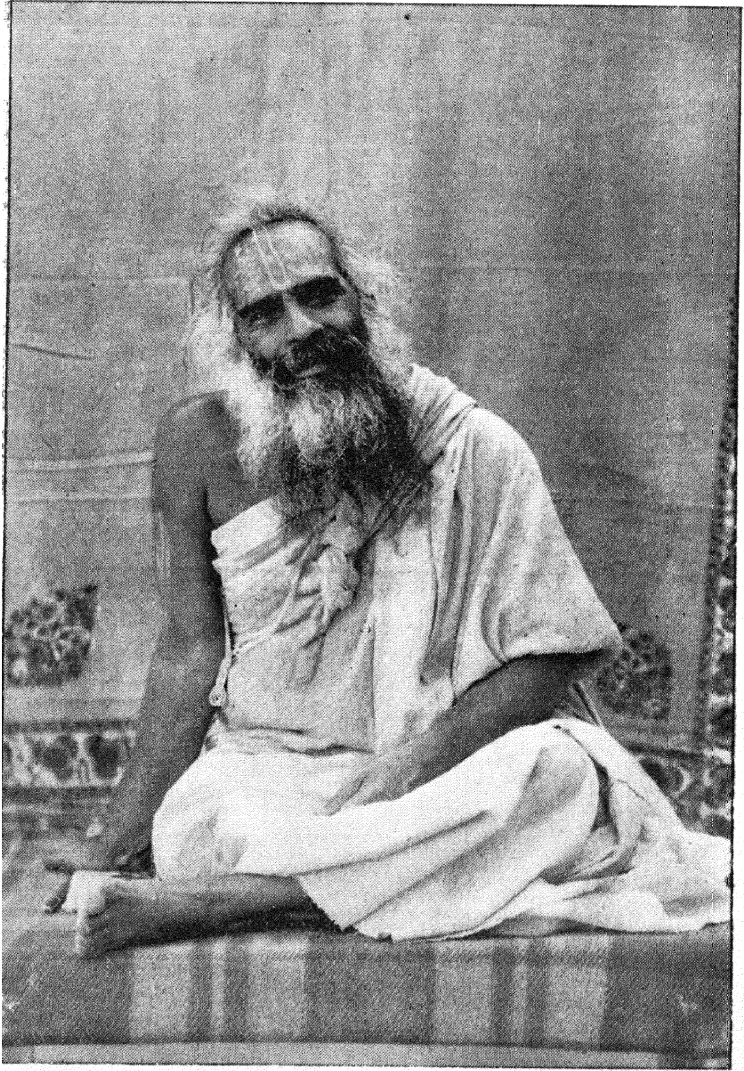
संत-कवि एवं साहित्यकार प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

परिचय

आपका जन्म ब्रजभूमि की मथुरा नगरी में हुआ। शिक्षा-दीक्षा खुरजा में हुई। अध्ययन और मननशील व्यक्ति होने के नाते आपने स्वाध्याय से ही अपनी योग्यता का विकास चतुर्मुखी किया। वैरागी स्वभाव प्रारम्भ से ही रहा, फलतः बहुत छोटेपन में ही आपने अपना घर छोड़ दिया था। धर्म और संस्कृति से विशेष निष्ठा रखने के कारण आपने काशी में वास किया और वहाँ संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया, तत्पश्चात् वेद और पुराणों का आद्योपांत अनुशीलन किया। आप कुछ समय तक 'आज' के संपादक-मण्डल में भी रहे। आपने 'निगमागम चन्द्रिका', 'आर्य महिला' 'वैष्णव वैभव' और 'युद्धवीर' नामक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। आप पहले बड़े क्रान्तिकारी विचारों के व्यक्ति थे। 'युद्ध-वीर' नामक पत्र में उनके क्रान्तिमय स्वभाव के प्रतिरूप जो पंक्तियाँ प्रत्येक अंक में मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं--

मर जाएंगे, मिट जाएंगे, शूली पर चढ़ जाएंगे।
कभी न पग पीछे रक्खेंगे, युद्धवीर कहलाएंगे।

जालियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के समय मथुरा स्टेशन पर आप गाँधी जी के सम्पर्क में पहली बार आए। आपने सन् २०-२१ में असहयोग आन्दोलन में प्रचार का काम किया। उन दिनों पं० जवाहरलाल जी नेहरू जब आगरा के राजनीतिक सम्मेलन में पहुँचे थे तो ब्रह्मचारी जी ने उन्हें विशेष आग्रह से खुरजा चलने को आमन्त्रित किया था और कई दिन तक नेहरू जी व ब्रह्मचारी जी स्थान-स्थान पर सभाएँ जुटाने में व्यस्त रहते थे। उन्हीं दिनों आपको जेल हुआ और लखनऊ में मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, पुरुषोत्तम दास टण्डन, देवदास गाँधी, कृष्णकान्त मालवीय,

रणेन्द्रनाथ बसु, आचार्य कृपलानी और श्री सम्पूर्णानन्द आदि व्यक्तियों के साथ आप भी बन्द हुए और वहीं से इन सबके सम्पर्क में आप आए।

आपने गंगा के किनारे पैदल यात्रा करके गंगासागर से हिमालय तक की यात्रा पूरी की और सम्पूर्ण देश के सभी कोनों में आप कई बार घूम आए। पहले आपने अपना निवास-स्थान कनखल (मुक्तिपीठ) में बनाया, किन्तु जलवायु अनुकूल न होने के कारण आप प्रयाग में झूँसी ग्राम में आकर बसे। सन् १९३६-३७ में आपने चौदह महीने का अखण्ड कीर्तन करवाया और तभी से आपके निवास स्थान का नाम संकीर्तन भवन पड़ा। आप कई वर्षों से केवल फलाहार ही करते हैं और आपने मौन व्रत भी ले रखा है। शरणार्थियों के सेवक के रूप में भी आपने बहुत कार्य किया। धार्मिक कार्यक्रमों और उत्सव को जमाने में तो आप प्रमुख ही हैं। १९२६ से आप प्रयाग में रह रहे हैं।

आपका अबतक का प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—रसखान पदावली, मतवाली मीरा, अन्ताक्षरी, श्री चैतन्य चरितावली, भागवत चरित (९१७ पृष्ठों में महाकाव्य), श्री बद्रीनाथ दर्शन, महात्मा कर्ण, नामकीर्तन-महिमा, श्री शुक, भागवत कथा की बानगी, शोक-शान्ति, प्रयाग महात्म्य, राघवेन्द्र-चरित, मेरे महामना मालवीय जी और उनका अन्तिम संदेश, भारतीय संस्कृति और शुद्धि, वृन्दावन महात्म्य, प्रभु पूजा पद्धति, कृष्ण लीला दर्शन (दो भागों में), भगवती कथा (१०८ खण्डों में) आदि-आदि। सभी पुस्तकें संकीर्तन भवन, झूँसी (इलाहाबाद) से प्रकाशित हैं।

भेंट

प्रश्न——साधु-जीवन में प्रविष्ट होने का मुख्य कारण रखने वाली आपके जीवन की कौन सी घटना है ?

उत्तर——साधु-जीवन में प्रविष्ट होने की मेरी कोई विशेष घटना नहीं। किसी घटना-विशेष से प्रभावित होकर मैं साधु नहीं हुआ। पूर्व जन्मों के संस्कारों से बाल्यकाल से ही मेरी धर्म में प्रवृत्ति थी, फिर वह संस्कृत पढ़ने से तथा परिस्थितियों के प्रभाव से बढ़ती ही गयी।

प्रश्न——धर्म की परिभाषा आपके अपने शब्दों में क्या है ?

उत्तर——धर्म की परिभाषा यही है कि जो हमें इस लोक और परलोक तक में निर्भय रख सके। हिन्दू-धर्म में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं, जिन्होंने धर्म के लिये बड़े-बड़े बलिदान किये हैं। धर्म शब्द ऐसा बहुमुखी है कि किसी भाषा के एक शब्द में इसका अर्थ संभव नहीं। रिलीजन, धर्म का एक अंग है, कहीं ड्यूटी का अर्थ भी धर्म है, कहीं कल्चर में, कहीं वर्णाश्रम के अर्थ में यह शब्द आता है। किन्तु व्यास जी ने धर्म की एक बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—'**जो बात अपने को बुरी लगे उसका दूसरे के साथ व्यवहार न करना**' इसे धर्म कहते हैं। वास्तव में जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस्-मोक्ष की प्राप्ति हो सके, वही धर्म है।

प्रश्न——संसार में जितने भी धर्म हैं, लगभग सभी में सत्य, अहिंसा और प्रेम को प्रधानता प्राप्त है और लगभग सभी ईश्वर की सत्ता भी मानते हैं। ऐसी स्थिति में क्या ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि सभी धर्मों को मिलाकर एक मानव-धर्म की स्थापना की जाय और जिसको अपना कर समस्त मानव-समाज एक ही सूत्र में बँध जाए ?

उत्तर—यहाँ धर्म के स्थान में 'सम्प्रदाय' का व्यवहार कीजिये। संसार

के सभी सम्प्रदाय चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। (१) जो वेद और ईश्वर को मानते हों, जैसे वर्णाश्रम सनातन आर्य धर्म। (२) जो वेद को तो मानते हों, ईश्वर को न मानते हों, जैसे सांख्य आदि। (३) जो वेद को तो न मानते हों, ईश्वर को मानते हों, जैसे ईसाई मुसलमान आदि। (४) जो ईश्वर और वेद दोनों को न मानते हों, जैसे नास्तिक आदि। धर्म हृदय की वस्तु है, मान्यता मन को अनुकूलतानुसार अपनी रुचि पर निर्भर है। सब की रुचि भिन्न-भिन्न है। इस संसार की स्थिति ही भिन्नता पर निर्भर है। एक उदर से उत्पन्न दो भाइयों की रुचि में भी अन्तर होता है, परस्पर में मतवैषम्य रहता है। सभी सम्प्रदायों का अभिप्राय यही है, कि सब में एक को देखो, सब से प्रेम करो। किन्तु 'सब' शब्द का अर्थ सब अपनी रुचि के अनुसार करते हैं। मुसलमान 'सबसे प्रेम करो' का अर्थ यही लगाता है, कि जिन्होंने इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर लिया है उन सब से प्रेम करो, शेष सबों को जैसे बने तैसे मुसल्लेईमान बनालो। इसी प्रकार सब की व्याख्या अपने-अपने अनुकूल है। ऐसी दशा में एक विश्वधर्म बनना असंभव है। यदि ऐसा कोई प्रयास करेगा भी, तो उसका एक पृथक् संप्रदाय बन जायगा। 'थियोसेफिकल सोसाइटी' ने ऐसा ही प्रयत्न किया था। उसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी सम्मिलित हो सकते हैं, किन्तु वह एक अलग ही सम्प्रदाय बन गया। सिक्ख-गुरुओं ने भी प्रयत्न किया, कबीर-पन्थियों ने, स्वामीदयानन्द ने सभी ने यही किया और इनके नाम से भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय बन गये। मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना, जब तक सब की रुचि एकसी न हो, ऐसा हो नहीं सकता। रुचि भिन्न रहेंगी ही। इसलिये मेरी बुद्धि में ऐसा संभव नहीं।

प्रश्न—इतिहास में जंगली-युग, पाषाण-युग, ताम्र-युग और लौह-युग की जो बातें हमारी शिक्षा के अन्तर्गत हमें दी जाती हैं, क्या आप उसे तथ्यपूर्ण मानते हैं? क्या आप प्रो० डारविन के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते? यदि नहीं, तो क्यों?

उत्तर--मैं इन बातों को एकदम असत्य और अज्ञानियों की कल्पना मानता हूँ। सतोगुण और तमोगुण में देखने में कोई अन्तर नहीं होता। समाधि में और निद्रा में ऊपर से देखने में कोई अन्तर नहीं। जो समाधि के रहस्य को नहीं जानता, वह किसी समाधिस्थ को देखकर यही कहेगा, हमने एक आदमी को बैठे-बैठे गहरी निद्रा में सोते देखा था। जब एक गलत सिद्धान्त बना लेते हैं, तो उसे सिद्ध मानकर कर नाना वाद-विवाद करते हैं। जैसे किसी ने यह सिद्धान्त मान लिया कि आक (मदार) की बोड़ी में कीड़े फलते हैं। आक की बोड़ी जब पकती है, तो उसके बीज से सटी रुई तुरंत हलकी होने के कारण पृथक्-पृथक् उड़ने लगती है। इस पर हम कहते हैं उस कीड़े के ५० पैर होते हैं, वह आकाश के छोटे जीवों को खाता है, आदि आदि; किन्तु मूल में ही सिद्धान्त गलत है। इसी प्रकार पहले लोग अवनत तथा जंगली थे; शनैः-शनैः उन्नत हो गये, पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, अब रेल, तार, डाक, टेलीफोन, कल-कारखाने, मोटर आदि बना कर, पुस्तकें लिखकर उन्नत हो गये, यह सिद्धान्त भी गलत है। वास्तव में उन्नत तो वे ही ऋषि महर्षि थे जो प्रकृति के साथ हिल-मिलकर रहते थे, अपने संपूर्णज्ञान को कंठस्थ रखते थे, पुस्तकों के द्वारा याद करना, लिखकर स्मृति रखना, विषय-भोगों को बढ़ाना, जीवन में संसारी भोगों की उन्नति की चाह रखना यह तो अवनति है, असभ्यता है। विषय सुख-सुविधाओं को ही उन्नति समझने वाले पाश्चात्य लेखकों ने यह भ्रामक, असत्य, मूर्खतापूर्ण, सात्विक बुद्धि के विपरीत इस प्रकार के विकास की कल्पना की है। जिसे पाश्चात्य प्रागैतिहासिक काल कहते हैं, वास्तव में हमारी उन्नति का वही युग था। जब से हम विषय-भोगों की सुविधाओं में बुद्धि का उपयोग करने लगे, तभी से अवनति आरंभ हुई। अब तो हमारे सब कार्य कलों से होते हैं, अतः कलों का युग ही घोर अवनति का युग है, मानव जितना ही कल-कारखानों के आधीन होगा उतना ही दुःखी एवं अशान्त होगा।

डारविन का सिद्धान्त बुद्धि के विपरीत है। हजार-पाँच सौ वर्ष में एक भी बन्दर मनुष्य बन गया हो तो मान भी सकते हैं। मानव अपने गुण-अवगुणों से उन्नत-अवनत होता है, किन्तु शरीर से मानव ही रहता है। यों तो ८४ लाख योनि हमारे यहाँ बतायी गयी हैं। जीव सभी योनियों में जाता है, किन्तु वानर से मानव इसी जन्म (कई पीढ़ियों में) में हो जाना बुद्धि के विपरीत बात है।

प्रश्न—रामायण में एक दोहा है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि ।।

इसके अर्थ हुए कि शिव व पार्वती ने अपने विवाह के समय गणेश जी की पूजा की, जबकि गणेश जी स्वयं उनके पुत्र थे। विवाह के पहले गणेश जी कहाँ से आए जो उनकी पूजा हुई ?

उत्तर—हमारे यहाँ विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य ये पाँच देव अनादि माने गये हैं। स्मार्त इन्हीं पाँच देवों की उपासना करते हैं। इन देवों के अवतार होते है, जैसे विष्णु के २४ अवतार हुए। इसी तरह शिव जी के पुत्र गजानन, गणेश के अवतार थे। शिव जी के विवाह में गणेश जी का पूजन होना ही चाहिये। आप कहें श्री राम तो विष्णु ही हैं, राम जी के विवाह में विष्णु का पूजन क्यों हुआ ? होना ही चाहिए, क्योंकि जिन विष्णु के राम आवतार हैं वे तो सनातन अनादि विष्णु हैं। इसी प्रकार गजानन के जन्म के पूर्व भी अनादि गणपति तो थे ही।

प्रश्न—मोक्ष अथवा मुक्ति क्या है ? मनुष्य को इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या यह पृथ्वी ही स्वर्ग नहीं बनाई जा सकती ?

उत्तर—संसार में दुःख ममता से ही है। नित्य बच्चे मरते हैं, नित्य बैंकों के दिवाले निकलते हैं, हमें दुःख नहीं होता, किन्तु अपना बच्चा मरता है या अपने बैंक का दिवाला निकलता है, तो दुख होता है, क्योंकि

हमारी उसमें ममता है। मोह-ममता के क्षय का ही नाम मोक्ष है। सभी सुख चाहते हैं और मोह-ममता वालों को सुख मिल नही सकता। इसीलिये मोक्ष की आवश्यकता है। मोह क्षय हो जाने पर पृथ्वी लोक ही स्वर्ग न बनेगा, उसके साथ ही सात लोक, चौदह भुवन सभी सुख के सदन बन जायेंगे। बिना मोह-क्षय हुए यह पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन सकती।

प्रश्न--राम और कृष्ण ऐतिहासिक आदर्श पुरुष थे अथवा स्वयं भगवान्। रामायण के अन्दर वर्णित निम्नलिखित घटनाओं को क्या आप यथार्थ मानते हैं--शिला का अहिल्या स्त्री के रूप में बदल जाना, हनुमान जी का पहाड़ उठा लाना व सूरज को मुँह में रख लेना, सुरसा का हनुमान जी को मुँह में रखना व उनका उसके कान से निकल जाना, हवा में उड़ कर सागर पार कर जाना आदि-आदि।

उत्तर--राम-कृष्ण पुरुष भी थे और भक्तों की भावना से भगवान् भी थे। जैसे मंदिर की मूर्ति पाषाण की तो है ही, भक्तों की भावना से देव भी है। मै तो रामायण में वर्णित सभी घटनाओं को सत्य ही मानता हूँ।

प्रश्न--सम्पूर्ण आर्यावर्त में शिवलिंग और गौरीपात्र के मन्दिर सर्वाधिक संख्या में पाए जाते हैं, इसका क्या कारण है ? शिव की उत्पत्ति कैसे हुई और उनके लिंग की पूजा का क्या रहस्य है ?

उत्तर--हमारे यहाँ तो पाँचों देवों की पूजा होती है। शिव जी की पूजा सरल है, केवल जल से ही प्रसन्न हो जाते हैं, इससे उनकी पूजा का आधिक्य है। शिव जी और शिवलिंग की उत्पत्ति पौराणिक विषय है। इस संकुचित स्थान में इनका वर्णन नही हो सकता। हमारे यहाँ सभी पुराणों की क्रमशः कथायें होती है, विशेष जानकारी के लिए जिज्ञासुओं को मेरी विशेष पुस्तकों को पढ़ना पड़ेगा।

प्रश्न--जगन्नाथ पुरी और दक्षिण भारत के कुछ-एक विशाल मन्दिरों

पर जो शिल्पकला है, उसमें स्त्री-पुरुषों के संयोग-आसन प्रस्तुत करने का क्या कारण है ?

उत्तर—यह तन्त्र का विषय है। **तन्त्र-ग्रन्थों में** ऐसा वर्णन है कि ऐसे चित्रों को अंकन करने से स्थान-विशेष पर कभी बिजली नहीं गिरती। यह प्रत्यक्ष भी है कि ऐसे मन्दिरों पर आज तक कभी बिजली नहीं गिरी, जब कि आधुनिक भवनों में बिजली न गिरने के लिए ताम्ब की पत्तियाँ या त्रिशूल लगाये जाते हैं।

प्रश्न—भाग्य को आप कोई वस्तु मानते हैं या नहीं ? यदि इसका स्थान है, तो इसका निर्माण कैसे होता है ?

उत्तर—भाग्य ही सब कुछ है, किन्तु पुरुषार्थ का भी अपना एक स्थान है। इसका संक्षिप्त में उत्तर देना ठीक नहीं है। इस विषय में मेरे विचार जानने के लिए मेरी 'महात्मा कर्ण' नामक पुस्तक सभी पढ़ सकते हैं। यह संकीर्तन भवन, झूँसी से ही प्रकाशित है।

...साहित्यिक अपना धन्धा जानते हैं। उनको सहज ही क्या-क्या योग्य है, इसकी पहचान हो जाती है। उन्हें कुछ कहना नहीं पड़ता है। इसलिये जो कहेगा उसकी धृष्टता होगी और मूर्खता इसलिये होगी; क्योंकि कोई भी साहित्यिक दूसरे के कहने से नहीं लिखता। वह तो अन्तःप्रेरणा से लिखता है, जब कि उसके लिए कोई बाहर का निमित्त कारण हो जाता है। जब साहित्यिक लिखने बैठते हैं, तो उन्हें ऐसा भान नहीं होता कि उन्होंने जो लिखा है उससे उन्होंने संसार पर उपकार किया है। यदि ऐसा भान हो जाये तो वह साहित्य नहीं होगा। साहित्य तो वही है जो आत्मा के सहित, आत्मा के साथ चलता है। इसलिए जब वह अन्दर की गहराई से बाहर आता है, तो सारे संसार के लिये पावन है।

—विनोबा भावे

डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला की नोक-झोंक (१)

महाकवि निराला की वाणी-वन्दना में रत डा० रामकुमार वर्मा।
(चित्र में लेखक व कलाकार पृथ्वीराज कपूर भी दृष्टिगत हैं।)
[उत्तर प्रदेश सरकार के प्रसार विभाग द्वारा निर्मित 'निराला' चलचित्र का एक स्टिल-स्नैप]

नोंक-झोंक (१)

मई १९५३ की बात है। मेरे यहाँ डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला भोजन पर आमन्त्रित थे। भोजन का समय ११ बजे दिन दिया गया था। महाकवि निराला ९½ बजे ही आ गये थे, किन्तु डा० वर्मा १२ बज जाने के बाद भी नहीं आ पाए। निराला जी से आज्ञा लेकर मैं डा० वर्मा को बुलाने उनके बँगले चल दिया और जब तक मैं उनको साथ लेकर घर में आया, महाकवि भोजन कर चुके थे। वे एक पलँग पर आराम कर रहे थे। हम लोगों के आने की आहट पाकर निराला जी उठ कर बैठ गए और मुस्कान के साथ बोले—"रामकुमार, यू आर टू लेट। आई हैव टेकन माई फूड। सारी! आई कुड नाट चेक माई हंगर।"* रामकुमार जी ने मुस्कराते हुये कहा—"आप क्यों मेरी प्रतीक्षा करते, मैं शायद करता होता, तो करता।" निराला जी ने सिगरेट की डिब्बी आगे करते हुए कहा—"भाई, भोजन तो वाकई बहुत उम्दा बना है। भीनी-भीनी महक आ रही थी......"

"... और इसीलिए आपने अपना भोजन कर डाला।" रामकुमार जी ने बात पूरी की। निराला जी झूमते हुए मुस्कराये। मैंने तुरन्त ही डा० साहब की थाली परोसवाई और जैसे ही वे दूसरे कमरे में भोजन करने बैठे, निराला जी तुरन्त वहाँ आ गये और बोले—"लाओ, तुम्हारा साथ दे दूँ।" वे वही उनके साथ ही बैठ गए और मुझे भी साथ बैठाया। डा० साहब को जिस कटोरे में गोश्त परोसा गया था, वह निराला जी के कटोरे से छोटा था। अतः निराला जी ने छुटते ही कहा—"रामकुमार. तुम क्या खाते हो खाना, सात छटाक के कटोरे में; मेरा कटोरा तो सत्तरह छटाक का था।" डा० साहब बोले—"भाई, खाने में मैं तुम्हारा

---

*खेद है कि मै अपनी भूख नहीं रोक सका।

मुकाबला नहीं कर सकता।" इस पर तुरन्त ही निराला जी बोले—"खाने में क्या, किसी चीज में हमसे मुकाबला करना कठिन है। हमारे और तुम्हारे साहित्य में कितना अन्तर है?" डा० साहब मुस्कराते चेहरे से बोले—"१९-२० होगा।" निराला जी ने कहा—"नहीं, १८ और २१।" डा० साहब बोले—"और सोच लो।" निराला जी बोले—"बस सोच लिया।" रामकुमार जी ने कहा—"हो सकता है १८-२० हो।" निराला जी बोले—"नहीं १०,-२०।" यह सुनकर डा० साहब बड़ी जोरों से हँसे और साथ ही-साथ निराला जी भी। डा० साहब ने मुझसे धीरे से कहा—"इनकी आदत दूसरों को चैलेन्ज देने की गई नहीं है।" इसी पर निराला जी बैसवाड़ी बोली में बोले—"मुश्किल तो ई है कि कौनो ठहरा भी नहीं।"

इतना कह कर निराला जी वहाँ से तुरन्त उठकर अपने पलँग पर आ गये। खाना समाप्त कर मैं और वर्मा जी पुन: उनके पास पहुँचे। निरालाजी ने तुरन्त एक कुर्सी पर संकेत करते हुये डा० साहब से बैठने के लिए कहा। अब निराला जी अपनी तम्बाखू हाथों पर मल रहे थे। डा० साहब ने पानों के बीड़े मुँह में दबाने के बाद सिगरेट सुलगाई। निराला जी पलँग पर एक ओर खिसक गये और फिर डा० साहब को भी पलँग पर ही बिठला लिया। डा० साहब ने पूछा—"आपका अब स्वास्थ्य कैसा है?" निराला जी बोले—"खराब ही कब था?" डा० साहब हँस पड़े और बोले—"मेरा मनलब है गर्मी से कोई परिवर्तन तो नहीं हुआ?" निराला जी ने उत्तर दिया—"मुझमें क्या है जिसकी गर्मी सतायेगी!" डा० साहब ने कहा—"इतना बड़ा साहित्य का काढ़ा जो पिया है, उसका कुछ तो उपयोग हो जाना चाहिये।"

उत्तर मिला—"बहुत उपयोग हो चुका, अब लोगों को मेरी आवश्यकता नहीं रही, आखिर कहाँ तक लोग मुझे अपनाएँ।"

"वाह", डा० साहब बोले—"विश्वविद्यालय में ही कभी-कभी चले आया करें, दो-चार लेक्चर देते रहिये तो कितना काम बने।"

"लेक्चर देने वालों की कमी कहाँ है, सब लेक्चर ही बाज हैं कि और कुछ ! मेरी किसी को क्या आवश्यकता है ?"

"कितनी बार तो आपको हिन्दी विभाग में आने के लिये लिखा गया, किन्तु आप कुछ सुनें तब तो।"

"मैंने बहुत से विश्वविद्यालय देखे। कलकत्ता, पटना, बनारस (वाराणसी), इलाहाबाद और लखनऊ सभी में तो भाषण दे चुका हूँ। अब तो मैंने साहित्य का अखाड़ा ही छोड़ दिया है। रामकुमार, अब इस क्षेत्र में रखा ही क्या है ? सब चीजें हम लोगों ने लिख मारी हैं।"

"लेकिन..."

"लेकिन का ! तुमहू अब विश्वविद्यालय का चक्कर छुवाड़ देव तौ कुछ कसिकै लिख पइहौ। तुम तो खूब सुन्दर लिखे हौ।"

"नहीं, मुझे तो अभी बहुत लिखना है। अखाड़े में आकर तो देखिये, हिन्दी को अभी बहुत चीजों की आवश्यकता है।"

"हाँ होगी, लेकिन हम अब दूसरों को जगह देना चाहते हैं। हमारे पीछे बहुत से नव-जवान आ रहे हैं। हम तो कलम रख दीन्हा है। अच्छा है लिखे जाओ।"

"मैं क्या लिखूंगा, आपकी कलम की बात ही..."

"नहीं-नहीं,* आई एडमायर योर एबिलिटी एण्ड डिगनिटी। यू आर

---

*मैं आपकी योग्यता और मर्यादा को मान्यता देता हूँ। आप एक प्रतिभावान व्यक्ति हैं। आप आवश्यकताओं की पूर्ति करें। मुझे जो लिखना था, मैं लिख चुका। अब विश्वविद्यालय पर्याप्त संख्या में योग्यतम छात्रों को जन्म दे। आप निर्माणकों में से एक हैं।

ए जीनियस वन । यू शुड फुलफिल द रिक्वायरमेन्ट्स । व्हाट् आई हैड टू राइट, आई हैव रिटेन । नाऊ यूनिवर्सिटीज शुड प्रोड्यूस ए गुड नम्बर आफ स्कालर्स आफ मेरिट । यू आर वन आफ दी प्रोड्यूसर्स । लेकिन..."

"लेकिन क्या"

"लेकिन इस सरकार के युग में कुछ नहीं हो सकता । जीनियस लड़कों की परख का समय आने के पहले ही, उनकी परिपाटी समाप्त हो जाती है ।"

"यही तो भारत के सामने सबसे बड़ी समस्या है ।"

"इस समस्या को सुलझाने की किसको फुर्सत !" निराला जी ने कहा और फिर पान की दो गिलौरियों को मुँह में रखकर चलते हुए। मेरे कुछ मित्रों की ओर (दर्शनार्थ जो कमरे में आ चुके थे) इंगित करते हुए बोले—"यह लोग आगे चलकर कुछ लिखेंगे तो इसमें जवाहरलाल या उनकी सरकार का क्या श्रेय ? ये तो अपना मार्ग स्वयं बना रहे हैं । अच्छा अब मैं चल रहा हूँ ।"

निराला जी 'थैंक्स' के साथ में घर के बाहर निकले और मैं उन्हें द्वार तक पहुँचाने आया । डा० शिवगोपाल साथ ही थे, अतः वे दारागंज तक निराला जी को पहुँचाने गए ।

कुछ समय बाद डा० रामकुमार जी ने भी बिदा ली ।

क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं है कि हमारे प्रोफेसर और विद्यार्थी विदेश के मामूली लेखकों के नाम, पते, उनकी खाने-पीने की आदतें, वे कैसे रहते हैं—यह सब कुछ जानते हैं, पर उनसे अगर पूछा जाय कि मलयालम् का महाकवि वल्लत्तोल कहाँ है, या काजी नजरुल इस्लाम की क्या हालत है या 'निराला' की मानसिक अस्वस्थता क्यों है, तो नहीं बता सकते ?

—मामा वरेरकर

डा० रामकुमार वर्मा व महाकवि निराला की नोक-झोंक (२)
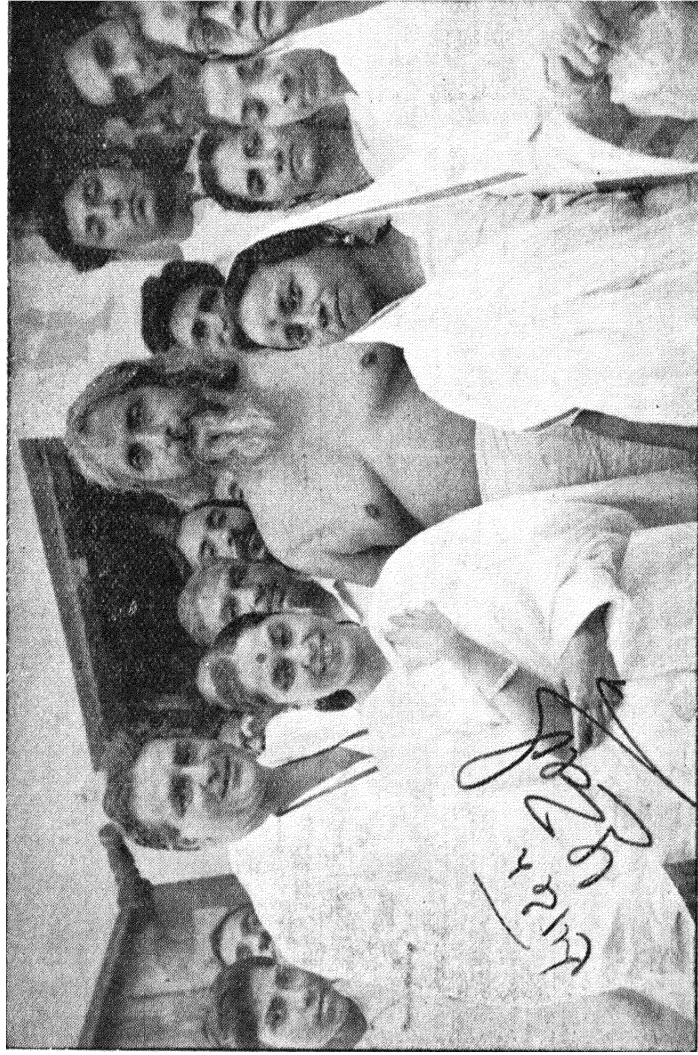
पृथ्वी थियेटर, बम्बई के कलाकारों के बीच महाकवि निराला । चित्र में डा० रामकुमार वर्मा भी दृष्टिगत हैं

नोक-झोंक (२)

२० अक्टूबर १९५३ को डा० रामकुमार वर्मा निराला-परिषद् के सदस्यों के साथ में पं० जवाहरलाल नेहरू से आनन्द भवन में मिले। इस अवसर पर मैं भी आमन्त्रित था।

जवाहरलाल जी से निराला जी के स्वास्थ्य और रायलटी के बारे में वार्ता हुई थी और जवाहरलाल जी ने परिषद् के सदस्यों से और डा० रामकुमार जी से विशेष तौर से यह कहा था कि निराला जी की जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हैं, उनके प्रकाशकों की सूची व उनसे प्राप्त रायलटी की निधि के विषय में उन्हें 'डायरेक्ट' लिखा जाय।

उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति के लिये डा० रामकुमार जी ने यह उचित समझा कि इस सम्बन्ध में महाकवि से व्यक्तिगत बात करने के बाद ही 'रिपोर्ट' तैयार की जाय तो अच्छा हो। डा० साहब को यह मालूम था कि निराला जी मेरे यहाँ प्रायः आया करते हैं और इसलिए उनसे मिलने का स्थान मेरा घर ही चुना गया।

१५ नवम्बर १९५३ को दिन तै हुआ कि महाकवि मेरे यहाँ भोजन ग्रहण करेंगे और इसी दिन डा० साहब भी आमन्त्रित हुए। उस दिन नेहरू-जयन्ती के उपलक्ष्य में इण्डियन काउंसिल आफ फिल्म अफेयर्स का अधिवेशन प्रयाग में जस्टिस बृजमोहन लाल की अध्यक्षता में हो रहा था। डा० साहब की प्रेरणा से ही यह आयोजन प्रयाग के धनी-मानी पं० निरंजन लाल भार्गव के विश्वम्भर पैलेस में हुआ और वहाँ डा० साहब को कुछ अधिक देर लग गई। इधर निराला जी मेरे घर आ चुके थे और देर होने के कारण बोले—"रामकुमार आज भी देर से

आयगे क्या ?' इसी समय डा० साहब की मोटर आती दिखाई दी और उनके आते ही भोजन का प्रबन्ध किया गया ।

अब निराला जी अपने अन्तर्नाद में पूर्ण व्यस्त होते हुए जोर-जोर से चित्रकूट के चिरौंजी के पेड़ों का किस्सा कह रहे थे । हम लोग व डा० साहब भी बहुत देर तक उनकी बातें ध्यान से सुनते रहे और फिर खाना शुरू हुआ । खाना खाने के समय ही डा० साहब ने निराला जी से प्रश्न किया—"आपकी अब तक कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ?"

"तुमने कितनी लिखी हैं ?" निराला जी ने पूछा ।

"मेरी किताबें तो अभी लिखी जा रही हैं, तब भी होंगी २६, २७ के लगभग ।"

"मेरी ६०, ६२ होंगी ।"

"रायलटी का कितना रुपया पा जाते हैं ?"

"अपनी कहो, मुझे तो खाने भर को आ जाता है ।"

"नहीं, फिर भी । ६०, ६२ किताबें लिख कर आपका कितना रुपया रायलटी का होता है ?"

"मुझे पता नहीं, कभी हिसाब भी नहीं लगाया । जरूरत भी क्या है । खर्चा चला जाता है ।"

"जरूरत क्यों नहीं, मेहनत आपने की, परिश्रम आपका है और लाभ प्रकाशक उठायें ! यह तो ठीक नहीं । उनको आपका हक तो देना ही चाहिए ।"

"दुनिया में कितनी जगह ऐसा ही हो रहा है । मेरे लिए ही क्यों चिन्ता की जाय ?"

"चिन्ता की बात है,......"

"यह सब सेकेन्ड्री बातें हैं । मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखतीं । तुम्हारी कितनी तनख्वाह है ?"

"मेरी बात छोड़िये ।"

"नहीं केत्ता पावत हौ ?" निराला जी बैसवाड़ी बोली में बोले ।

"७००) रु०"

"और रायलटी कितनी आ जाती है, एक वर्ष की ?"

डा० साहब मुस्कराते हुए चुप हो गये ।

"रामकुमार ! बोलो ना, कितना मिल जाता है ?"

"लगभग ७,८ हजार रुपये ।"

"यानी ८००) रु० महीना । कुल भवा १५००) रु० । कित्ते परानी हौ घर मा ?"

"ढाई ।"

"ठीक तो है । मजे से खा-पी लेते होगे ।" निराला जी ने कुछ व्यंग करते हुए कहा,—'अभी २,०००) रु० भी तो नहीं हुआ कि ८००) रु० परानी पड़े ।'

रामकुमार जी हँसते हुए बोले—"'आप अपने ऊपर कितना खर्च करते हैं ? यह रुपया लुटाने से क्या फायदा ? दान ही करना है, तो प्रकाशकों से रुपये लेकर बाकायदे दान करिए ।"

"किससे हिसाब लिया जाय ? लाखन में तो पड़ा है । कितना हिसाब करूँ । हमारा हिसाब जब सरकार ही नहीं करती तो फिर किसको क्या देना-लेना है ? जब वह दिल्ली ही सही रास्ते पर नहीं चलती, तो फिर इन किताब वालों से क्या हिसाब लें ? किताब लिखना मेरा काम है । हिसाब लेना क्या होता है मैं नहीं जानता । हिसाब-किताब करना हो तो, वह तो फिर लाखों में नहीं करोड़ों में होगा । दस-बीस लाख होता क्या है जी ? हिसाब-किताब, हिसाब-किताब, हिसाब-किताब । मैं अकेला हिसाब क्या लूँ । लेने वाले लें ।"

"लेकिन ऐसे तो काम नहीं चल सकता । कैसे चले ? कुछ बताइए तो प्रबन्ध किया जाय । प्रकाशकों को पकड़ा जाय ।"

"बता दिया हिसाब-किताब, रामकुमार तुम नहीं समझ सके तो मैं क्या समझूँ। अब इसकी बात मत करो। यह सेकेन्ड्री चीज है, सेकेन्ड्री।"

"सेकेन्ड्री कर कर के ही तो आपने अपनी कोई परवाह नहीं की।"

निराला जी कुछ नहीं बोले और वे अपने अन्तर्नाद में फिर व्यस्त हो गये। चिरौंजी वाले बाग की धुन में फिर लिप्त हो गये। कुछ देर बाद ही भोजन समाप्त हुआ और निराला जी हाथ-मुँह धोने के बाद ही तुरन्त चलने लगे। पानों के बीड़े मुँह में रखे, सिगरेट सुलगा ली और दोनों हाथ से हाथ जोड़ कर नमस्कार करके एक-दम चल दिये। मैंने उन्हें बाहर रिक्शे तक पहुँचाया और लौट कर जब फिर घर में आया तो डा० साहब मुझसे बोले—"निराला जी सोचते बहुत हैं, मोह-माया सब भूल बैठे हैं। इसलिये वे अपने वश में नहीं हैं। मस्त जीव हैं। मस्त हैं, जल्दी इन्हें साधा भी नहीं जा सकता। वे अपने को भुला बैठे हैं। कैसा अजीब रूप धर लिया है! एक लुङ्गी ही उनकी सर्वेसर्वा है!"

मैं अपने एक गाल पर हाथ रखे डा० साहब की बातों को सुनता रहा और फिर बोला—'क्या कहा जाय डा० साहब, आपका और मेरा दोनों का ही प्रयास बेकार गया। निराला जी ने तो सब 'सेकेन्ड्री' में ही समाप्त कर दिया।'

रामकुमार जी हँस पड़े और फिर वे भी थोड़ी ही देर बाद चलने को तैयार हुए। मैं उन्हें उनकी मोटर तक पहुँचाने गया।

निराला जी के उपर्युक्त वार्तालाप और विचारों को सुन कर महाकवि के हृदय की टीस को समझना मेरे विचार से कठिन नहीं है।

प्रसंगवश, पुस्तक में आए हुए साहित्यकारों एवं विद्वानों की नाम-सूची

श्री जयशंकर प्रसाद
श्री हरिऔध
श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
श्री बच्चन
श्री गुरुभक्त सिंह
श्री प्रेमचन्द
श्री यशपाल
श्री सेठ गोविन्ददास
श्री जैनेन्द्र
श्री कवि भुशुण्ड जी
श्री इलाचन्द्र जोशी
श्री शरतचन्द्र
श्री डी० एल० राय
श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
श्री दलीपकुमार राय
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
श्री चण्डी प्रसाद 'हृदयेश'
श्री सत्येन्द्र शर्मा
श्री सनेही जी
श्री मोहन सिंह सेंगर

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री
श्री अमृत राय
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन
श्री सम्पूर्णानन्द
श्री बोधराज सहानी
श्री प्यारेमोहन मिश्र
श्री नीरज
श्री परिपूर्णानन्द वर्मा
श्री गोविंदवल्लभ पंत
श्री अमृतलाल नागर
श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव
श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी
श्री अयोध्यानाथ शर्मा
श्री कन्हैयालाल सहल
श्री बल्देव प्रसाद मिश्र
श्री शिव आधार पाण्डेय
श्री देवीदत्त पंत
श्री वियोगी हरि
श्रीयुत कवि भानु

श्री कवि छत्रसाल जी
श्री विश्वम्भर प्रसाद गौतम
श्री शाह लखनवी
श्री भगवतीचरण वर्मा
श्री नरेन्द्र शर्मा
महाराज विश्नाथ सिंह
महाराज रघुराजसिंह
श्री० केदारनाथ गुप्त
ठा० श्रीनाथ सिंह
श्री स० ही० वा० 'अज्ञेय'
श्री बालकृष्णराव
श्री नागार्जुन
डा० धीरेन्द्र वर्मा
डा० मैथिलीशरण गुप्त
डा० गंगानाथ झा
डा० अमरनाथ झा
डा० श्यामसुन्दर दास
डा० राम शंकर शुक्ल 'रसाल'
डा० रामरतन भटनागर
डा० रामबिलास शर्मा
डा० नगेन्द्र
डा० सत्येन्द्र
डा० भागीरथी मिश्र
डा० दीनदयाल गुप्त
डा० धर्मवीर भारती
डा० जगदीश गुप्त
डा० शिवगोपाल मिश्र
डा० शिव मंगल सिंह सुमन
डा० के० एम० अशरफ
आचार्य शिवपूजन सहाय
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
आचार्य गुलाबराय
आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी
आचार्य क्षितमोहन सेन
बा० रामचन्द्र टण्डन
आचार्य चतुरसेन शास्त्री
श्रीमती सरोजनी नायडू
श्रीमती महादेवी वर्मा
श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान
श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा
श्रीमती विद्यावती 'कोकिल'
श्रीमती तारा पण्डेय
श्रीमती शान्ति महरोत्रा
श्रीमती विद्यावती मिश्र
पं० रामनरेश त्रिपाठी
पं० ब्रजमोहन व्यास
पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी
पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी
पं० ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'
पं० जयगोपाल मिश्र
पं० माखनलाल चतुर्वेदी

पं० बनारसी दास चतुर्वेदी
पं० विधुशेषर शास्त्री
व्यास मुनि
महर्षि बाल्मीक
महाकवि कालिदास
प्रो० मैक्समूलर
प्रो० डारविन
शेक्सपियर
मिल्टन
कार्ल मार्क्स
सर वाल्टर स्काट
अल्डास हक्सले
डा० शेर वास्की

लियो टाल्सटाय
रोम्या रोलां
महाकवि गेटे
कबीर दास
चंद दास
मीरांबाई
तुलसीदास
स्वामी रामकृष्ण परमहंस
स्वामी विवेकानन्द
महात्मा गाँधी
मिर्जा गालिब
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

———